

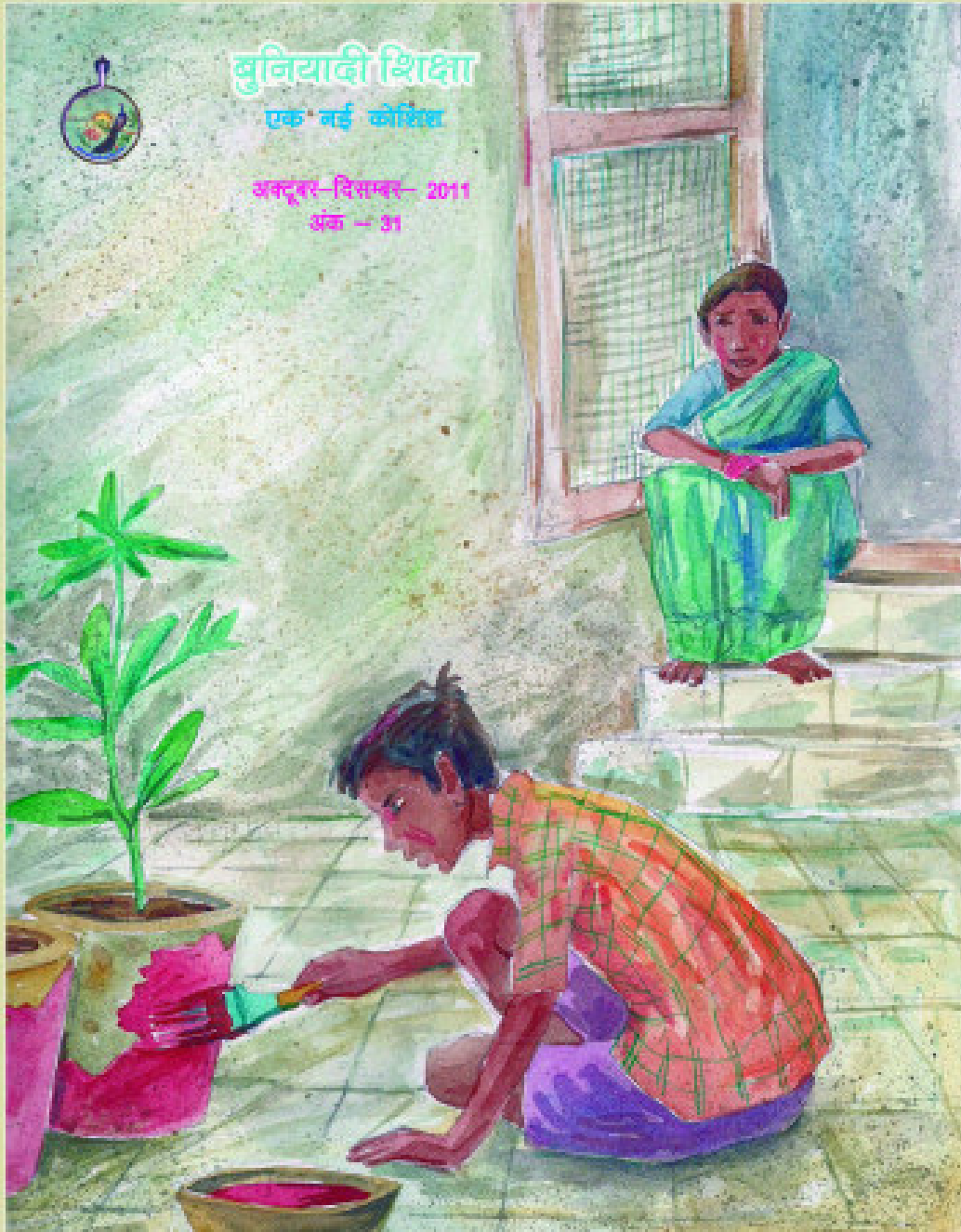


बुनियादी शिक्षा

एक नई कोशिका

अक्टूबर-दिसम्बर- 2011

अंक - 31



बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

अंक-31



इस अंक में

परामर्श-प्रबन्धन	संपादकीय	1
इंदय कांत दीवान रमाकान्त अग्निहोत्री	विट्ठी-पकी	2
संपादन प्रभारी	नयी तालीम के समझ चुनौती नारायण भाई वैसाई	4
भाग चन्द्र कुमावत	नयी तालीम को आमंत्रण रमेश धानवी	13
संपादक मण्डल	नयी तालीम का जवाबदारी - गांधी का विद्यालय प्रभुदास शर्मा	16
विश्व विजया सिंह के.आर. शर्मा गुरुबचन सिंह कमलेश जोशी कुमार अनुपम गिरीश शर्मा	दादा की कुछ यादें जलन प्रकाश सोनी	21
	बुनियादी शिक्षा जीवन की शिक्षा है विश्व विजया सिंह	26
	बुनियादी शिक्षा में समवाय : आगे कैसे बढ़ें बन्धु शर्मा	29
चित्रांकन	प्रकृति की सीर शक्ति, गिताली, आदित्य, तनी, कनिष्का	31
प्रशांत सोनी	समवायी शिक्षा में व्यक्तित्व का विकास दशरथ चन्द सोनी	33
कंप्यूटर सेटिंग	बुनियादी तालीम के विचार की पड़ताल किशोर चन्द	38
इसरार अहमद	भाषा के संदर्भ में गांधीजी के विचार लक्ष्मी नारायण मिश्र	43
टाइपिंग सहयोग	पानी कहाँ-कहाँ से	47
शाकिर अहमद		
संपादकीय पता		
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र फतेहपुरा, मोहन सिंह मेहता मार्ग उदयपुर (राज.) 313 004 फोन : (0294) 2451497 Email : vbsadr@yahoo.com		

इस अंक की सहयोग शक्ति व्यक्तित्व आंक/कृपिण्डर शर्मा सहित : 50 रुपया, आर्गिक- 200/- रुपया तथा संस्था हेतु आर्गिक सहयोग शक्ति 400/-रुपया
बैंक/ड्रॉपट/एम.ओ. - विद्या भवन सोसायटी के नाम से बनवाए।

विद्या भवन सोसायटी और अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का संयुक्त प्रकाशन

संपादकीय

आजकल गुणात्मक शिक्षा पर काफी बहस हो रही है, विशेषतौर से स्कूली शिक्षा के बारे में। इस बहस में स्कूली शिक्षा की सार्थकता, प्रयोजनों, जीवन में उसकी व्यावहारिकता और बच्चों में वैयक्तिक और सामाजिक मूल्यों के विकास आदि मुद्दों के संदर्भ में विभिन्न मत-मतान्तर उभर के सामने आए हैं। गुणात्मक शिक्षा क्या है, पर यदि एक बार आम सहमति बन जाए और उसके मापदण्ड तय कर दिए जाए, तो निश्चित तौर से बुनियादी तालीम का शिक्षाशास्त्र और उसका ढांचा गुणात्मक शिक्षा के लिए बिलकुल सही बैठेगा। जरूरत है, बुनियादी तालीम के सिद्धान्तों और उनके निहितार्थ को समझने की और उन्हें आज की स्कूली परिस्थितियों में कार्यरूप में परिणित करने की। हमारे सामने यह एक चुनौती है। विद्या भवन संस्थान पिछले दस वर्षों से इस चुनौती से जूझ रहा है। इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए मिलजुल कर प्रयास करने की जरूरत है।

हम आशा करते हैं कि इस पत्रिका के माध्यम से देश में बुनियादी तालीम पर काम करने वाले, इस शिक्षा व्यवस्था में विश्वास व रुचि रखने वाले और अर्थपूर्ण शिक्षा पर चिन्तन करने वाले लोगों के बीच संवाद आगे बढ़ेगा और बुनियादी तालीम के विमर्श को एक नई दिशा मिलेगी।

इस अंक में आप, आज की शिक्षा व्यवस्था की कमियों, बुनियादी तालीम में व्यक्तिवाद व समाजवाद में अद्वैता और शिक्षा में समवाय, महात्मा गांधी द्वारा संचालित पाठशाला की एक तस्वीर से रूबरू होंगे। यह अंक आपको कैसा लगा, आपकी समालोचनात्मक टिप्पणी आमंत्रित है। साथ ही हम चाहते हैं कि आप बुनियादी शिक्षा के बारे में अपने विचार व अनुभव हमें भेजें।



चिट्ठी-पत्री

‘बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश’ अंक 29 में अनेकानेक ज्ञानवर्धक आलेख थे, नयी तालीम की नयी दिशा, व बुनियादी शिक्षा में शिक्षक की भूमिका, डायरी के पन्ने (बचपन) अति उपयोगी लगे।

आज हमारे समाज में शिक्षक आरोपों के कटघरे में खड़ा है, समाज में उसकी सामाजिक छवि और स्थिति में ही ह्रास हुआ है। आम शिकायत यह है कि शिक्षक पढ़ाना नहीं चाहते, वे अपने पेशे के प्रति प्रतिबद्ध नहीं हैं। उनकी व्यावहारिक प्रतिबद्धता पर प्रश्न चिह्न लगाये जाने लगे हैं, क्या वास्तव में शिक्षक अपने छात्र, समाज, संस्था व राष्ट्र के प्रति संवेदनहीन हो गये हैं? यदि ऐसा है तो उसके लिए कौन सी परिस्थितियां उत्तरदायी हैं? क्या सामाजिक संरचना उसे ऐसा करने को बाध्य कर रही है? एक स्वस्थ राष्ट्र के लिए इन प्रश्नों पर विचार किया जाना चाहिए।

शिक्षक के व्यक्तित्व में सहनशीलता, नम्रता, सुशीलता, स्नेह एवं सद्भावना आदि गुणों का समावेश होना चाहिए, जिनकी अध्यापकीय व्यक्तित्व में अनिवार्यता समाहित होने की अपेक्षा की गई है, यह शिक्षक प्रतिबद्धता का एक बहु आयामी प्रारूप है।

कालिका प्रसाद सेमवाल

ज़िला संसाधन केन्द्र (मिनी डाइट)

रतूडा (रुद्रप्रयाग) उत्तराखण्ड – 246171

09410760663

‘बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश’ और ‘खोजें और जानें’ पत्रिकाएं नियमित रूप से मिल रही हैं। देश की शिक्षा व्यवस्था के बारे में इन पत्रिकाओं में शिक्षा पर केन्द्रित मौलिक, नायाब व काफ़ी उपयोगी सामग्री है।

मैं इन पत्रिकाओं के लिए इस पत्र के साथ अपनी कुछ कविताएं भेजा रहा हूँ। जो कविता उपयोगी लगे, उसका आप उपयोग कर सकते हैं।

राग तेलंग

जी-4, फारच्यून एंक्लेव कोलार रोड,

भोपाल (मध्यप्रदेश)– 462042

मो. 9425603460

‘बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश’ में समाहित सामग्री का एक-एक वाक्य शिक्षा दे रहा है। आदरणीय हृदय कांतजी दीवान का मातृभाषा के मायने, गांधी शताब्दी स्मारक ग्रंथ से उद्धृत आत्म प्रकाश मिश्र का महात्मा गांधी और शिक्षा, बहमलीन दयालजी के विज्ञान और अध्यात्म में समन्वय जैसे आलेख न केवल बार-बार पठन योग्य हैं, वरन् हृदयंगम करने लायक हैं। निस्संदेह इन विचारों को हमें, विशेषकर शिक्षकवृंद को अपने चरित्र का अंग बनाने पर ही बापू के हिन्द स्वराज एवं रामराज्य का स्वप्न साकार हो सकता है। इन अंकों के सभी आलेख बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

रामगिरि स्थित बुनियादी मदरसे (1941-1988) का यशस्वी इतिहास हमारी साझी विरासत है। मोहन सिंहजी मेहता जैसे दृष्टि सम्पन्न शिक्षाविदों की ओर से मिला उपहार है, यह मदरसा। फिर इस मदरसे को आधुनिक संदर्भों के साथ शुरू करने का प्रयास ‘बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश’ के अन्तर्गत किया जा रहा है, यह गर्व का विषय है। कुछ वर्ष पहले मेरी उदयपुर यात्रा के समय, आपने इस मदरसे का दर्शन करने का सौभाग्य, मुझे प्रदान किया था। वे स्मृतियां आज भी मेरे मानस पटल पर जिन्दा हैं। तब दयालजी भी जीवित थे।

‘बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश’ संयोजन, आवरण एवं पृष्ठ संख्या, सम्पादन, समग्रतः हर दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी, अनुकरणीय एवं संग्रहणीय है। कृपया हमारी बधाई स्वीकार करें।

विश्व साक्षरता दिवस की शुभकामनाओं के साथ

ओम प्रकाश सारस्वत
मुख्य सम्पादक
शिक्षा विभागीय प्रकाशन
शिविरा एवं नया शिक्षक
माध्यमिक शिक्षा निदेशालय
बीकानेर 334011

‘बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश’ तथा ‘खोजबीन’ के कुछ पूर्व अंक भी मिले। बहुत अच्छा काम कर रहे हैं आप और आपकी संस्था, इन दोनों पत्रिकाओं के प्रकाशन से।

शिक्षा क्षेत्र में पूरे देश में पत्रिकाएं हैं ही कितनी? आपका प्रयास देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मैं यही कामना करता हूँ कि ये दोनों पत्रिकाएं खूब प्रगति करें और पाठकों को शैक्षिक चिंतन-मनन एवं अनुशीलन में रुचिवान व विद्वान् बनाकर व्यवहार में भी प्रयोगशील बनाती रहें।

मैं कुछ लिख सका तो ज़रूर आपको भेजूंगा। शिक्षा संसार के कई पहलू पुनर्चिंतन एवं परिवर्तन की अपेक्षा रखते हैं। लिखूंगा तो ज़रूर भेजूंगा।

शिवरतन थानवी
मोची स्ट्रीट
फलोदी-342301
(जोधपुर, राजस्थान)

नयी तालीम के समक्ष चुनौती

★ नारायण भाई देसाई

नारायण भाई देसाई वर्तमान में गुजरात विद्यापीठ (विश्वविद्यालय) के कुलपति हैं। आपने अपना पूरा जीवन गांधीवादी दर्शन और विचार में लगा दिया है। गांधी विचार के अमलीकरण के लिए आप उग्र दराज होने के बावजूद आज भी गांधी कथा का वाचन करते रहते हैं। प्रस्तुत लेख में देश में आज के संदर्भ में बुनियादी तालीम की पुनः प्राणप्रतिष्ठा करने पर अपने सटीक विचार प्रस्तुत किए हैं और साथ ही आज की शिक्षा व्यवस्था की कमियों व विश्व की दशा व दिशा पर टिप्पणी की है।

आज नयी तालीम के सामने जो चुनौती है वह सतही चुनौती नहीं है। सिर्फ इतना ही नहीं है कि एक जमाने में भारत के कई प्रदेशों में नयी तालीम के स्कूल थे, अध्यापन मंदिर थे। आज कई प्रदेशों में नहीं हैं, दो-एक प्रदेशों में हैं। गुजरात के विषय में तो मैं कह सकता हूँ कि वहां नयी तालीम के स्कूल चलते हैं और गुजरात की सरकार उन स्कूलों को जितना जल्दी-से-जल्दी संभव हो समाप्त करने की कोशिश कर रही है। लेकिन इस सारी चुनौती को मैं सतही मानता हूँ। चुनौती उससे ज्यादा गहरी है। वास्तव में आज जगत में मौत की ताकतों और ज़िन्दगी की ताकतों के बीच में संघर्ष चल रहा है और नयी तालीम के सामने यदि चुनौती है तो वह जीवन की ताकतों को पुष्ट कैसे करना है, यह एक चुनौती है।

मुझे लगता है कि ज्यादा जो सोचने लायक बात है, वह है शिक्षा ने जीवन की ताकतों की ओर से मुंह मोड़ लिया है और मौत की ताकतों के अनुकूल उसका मुंह हो गया है। यानी जितनी ही वह सफल होगी, मौत की ताकतों का अधिक

सफल बनाकर रहेगी। मौत की ताकतों का यह लक्षण है कि वे डिविसिव या विभाजक होती हैं। जिस समाज में ये ताकतें लगती हैं, उस समाज को बांटकर छोड़ती हैं। तो, जहां आधुनिक शिक्षा-पद्धति पहुंचती है, वहां वह ग्राम से लेकर विश्व तक, हर जगह विभाजक ही सिद्ध होती है। गांव में, वर्गों में, देश में, मैं तो, यहां तक देखता हूँ कि एक समाज को विभाजन करनेवाला माध्यम यह शिक्षा है और यह उसका एक पहलू है।

इसका दूसरा पहलू यह है कि आधुनिक शिक्षा उपभोगवादी संस्कृति को पुष्ट करती है। तीसरी बात, वह है, जिसे अंग्रेज़ी में 'रिप्लेसमेंट' कहते हैं, एक की जगह को दूसरे द्वारा छीनकर ले लेना। श्रम का 'रिप्लेसमेंट' सम्पत्ति ने किया है। श्रम के स्थान पर सम्पत्ति ने कब्ज़ा कर लिया है और उसको कैसे कुशलतापूर्वक कब्ज़ा करना है, यह सिखाना इसी को आधुनिक शिक्षा कहा जाता है। इसलिए आधुनिक शिक्षा, आज भी पूरी तरह जागतिक व्यवस्था का एक उपकरण है और वह जागतिक व्यवस्था मौत, की ताकतों की समर्थक है। इसीलिए

★ गांधी विद्यापीठ, नहर कांटे, वेड़छी, सूरत।

मैं कहता हूँ कि समस्या या जो चुनौती है, वह सतही नहीं है, गहरी है और इन सब चीजों की रक्षा के लिए, इस सारी व्यवस्था को सैनिक शक्ति का समर्थन प्राप्त है। यह सारी व्यवस्था बिना फौज की ताकत के टिक नहीं सकती। इस बात को हमें समझना चाहिए कि यह सब एक परिपूर्ण षडयंत्र है।

इस षडयंत्र को बढ़ानेवाला, पुष्ट करनेवाला, उसका रक्षण करनेवाला, जो शिक्षातंत्र है, इस शिक्षातंत्र का मुकाबला करना, यह नयी तालीम के सामने एक चुनौती है। इससे कम चुनौती, यदि हम समझेंगे तो हम इधर-उधर कहीं शायद कुछ परिवर्तन भले कर दें, पर इससे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। फर्क तो तब पड़ेगा, जब हम वर्तमान समय में चल रहे इस सारे तंत्र के मूल में आकर, उसका मुकाबला करेंगे। मुकाबले में आज जो स्थिति दिख रही है, वह ऐसी है कि जीवन की ताकतें काफी कमजोर हैं। फिर भी कुछ ताकतें हैं, जो जिन्दगी की ताकतों के अनुकूल हैं और जिनका उपयोग नयी तालीम को करना चाहिए। पर पहले हम यह समझ लें कि जिन्दगी की ताकतें हम किसे कहेंगे। विनोबा ने तो, इस शब्द का इस्तेमाल इमरजेन्सी के बाद तय किया था, जब उनसे पूछा गया था कि तानाशाही का जवाब क्या? तो विनोबा ने इस शब्द को उलटकर कह दिया कि तानाशाही का जवाब नाताशाही। दुनियाभर में नाताशाही जोड़ने के प्रयोग-प्रयास चल रहे हैं। 'एफिनिटी' शब्द उसके लिए इस्तेमाल होता है, यह नाताशाही है। जहां एक उद्देश्य से काम हो, सुख का बंटवारा हो, दुःख का बंटवारा हो और एक आसमान के नीचे सब समान होकर प्रार्थना करें, वह नाताशाही है।

कुछ इस तरह के थोड़े बहुत भी प्रयोग, लेकिन

मार्मिक प्रयोग जगतभर में चल रहे हैं, जहां क्रियेटिविटी या सृजनशीलता ने यांत्रिक श्रम का स्थान लिया है और उसका मूल्य लोगों में काफी बढ़ रहा है, तो जहां क्रियेटिविटी को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है, वह भी मुझे जीवन की ताकतों में एक ताकत मालूम होती है। मुझे लगता है कि केन्द्रित व्यवस्था का उत्तर शायद होगा, तृणमूल, ग्रासरूट। यह तृणमूल व्यवस्था जहां है, वहां से हम नाताशाही बनाकर, उनका नेटवर्क जय जगत तक ले जायेंगे। अब ग्राम स्वराज्य और जय जगत का नाता जुड़ना चाहिये, दोनों अगर अलग-अलग होंगे, तो मुझे लगता है कि जीवन की ताकतें उसमें एक नहीं हो पायेंगी।

इसी तरह शिक्षा के संबंध में भी अलग-अलग प्रयोग हो रहे हैं। यह मत मानिये कि नयी तालीम खतम हो गई, ऐसा कहा अवश्य जाता है, लेकिन नयी तालीम का नाम इस्तेमाल किये बिना भी, नयी तालीम के प्रयोग जगत भर में चल रहे हैं। ऐसे हज़ारों लोग हैं जो बड़े गर्व के साथ कहते हैं कि मेरा लड़का स्कूल में नहीं जायेगा। क्योंकि ये स्कूल जो हैं, वे ग़लत तंत्र का हिस्सा हैं, उपकरण हैं। हम नया तंत्र इसमें से पैदा करना चाहते हैं। इस प्रकार की शिक्षा के प्रयोग हैं। उसके आधार पर हमें नयी तालीम को खड़ा करना पड़ेगा।

जब हम नयी तालीम को खड़ा करने की बात करते हैं, तो जो चुनौती मैंने आपके सामने रखी, वही खड़ी होती है। इस संदर्भ में यह ध्यान रखना चाहिए कि मूल विचारों में, गांधी के मूल विचार में भी, कुछ होता है तत्त्व और कुछ होता है तंत्र। तत्त्व वह है, जो देशकाल से अबाधित रहता है। किसी भी देश में, किसी भी स्थान पर वह तत्त्व वही रहेगा। किसी भी काल में वह तत्त्व उतना ही आवश्यक रहेगा। कोई यह नहीं कहेगा कि सत्य

की आवश्यकता यहां है, वह पाकिस्तान में नहीं है। कोई यह नहीं कहेगा कि अहिंसा की आवश्यकता आज है, पांच सौ सालों के बाद नहीं रहेगी। सत्य—अहिंसा तत्त्व हैं गांधी विचार के। वैसे ही साधन—शुद्धि तत्त्व हैं गांधी विचार के। ये तत्त्व देश—काल से अबाधित हैं। लेकिन जो तंत्र है वह बदलना आवश्यक है और वह देशकाल के अनुरूप बदलता जायेगा। जितना ही तंत्र बदलेगा, उतनी ही नयी तालीम, नित्य नयी तालीम रहेगी। अगर तंत्र नहीं बदलेगा तो नयी तालीम भी पुरानी तालीम बन सकती है।

इसलिए हमको नयी तालीम के तत्त्व को कायम रखना होगा, लेकिन उसका तंत्र जो बदलेगा उसका मुंह भी तत्त्व की ओर ही होना चाहिये। तंत्र बदल दिया है, इसलिए बदलने की छूट हो गयी है और फिर बदलकर उसका मुंह उलटा कर दिया, तो नहीं चलेगा। तंत्र यदि बदलता है, तो भी उसका मार्गदर्शक ध्रुवतारा तो तत्त्व ही होना चाहिए। तरीके बदलेंगे, कल तकली थी आज चरखा, फिर अम्बर चरखा, अम्बर चर्खे के बाद में मानता हूं कि सौर ऊर्जा से चलनेवाला चरखा भी हो सकता है और वह होगा कभी न कभी। सौर ऊर्जा से चलनेवाला चरखा क्यों न चले? चल सकता है और वह चले। लेकिन चलेगा किस प्रकार से? इसमें सबसे पीछे के आदमी का विचार सबसे पहले होगा, इसमें प्रकृति की बरबादी का विचार किया जायेगा, बरबादी न हो इस विषयक विचार किया जायेगा। इस प्रकार से तंत्र की जो दिशा होगी, वह दिशा तत्त्व की ओर होगी। यदि नयी तालीम को हमें आगे चलाना है, तो यह तंत्र एवं तत्त्व के भेद को हमें समझना पड़ेगा।

यह करने के लिए हमें बहुत, और मैं 'बहुत' को जोर देकर कह रहा हूं कि इसका मतलब है

हमको सैकड़ों नहीं शायद हजारों प्रकार की 'इंटरमीडियेट टेक्नोलॉजी' के प्रयोग करने पड़ेंगे, नयी तालीम के लिए। केवल जो तंत्र हम लोग चला रहे हैं, वही तंत्र हम चलायेंगे यह नहीं, लेकिन हमारी टेक्नोलॉजी, जो हमारी आज की, जिसे हम सही ज़रूरत मानते हैं उसे पूरा करने के लिए आवश्यक है। विलासिता की बात मैं नहीं कर रहा हूं लेकिन जिनको हम सही ज़रूरत मानते हैं, उन सही ज़रूरतों को पूरी करनेवाली जो—जो टेक्नोलॉजी हमारी होगी जिसमें मनुष्य का स्थान टेक्नोलॉजी के ऊपर मास्टर का होगा, टेक्नोलॉजी मनुष्य की मास्टर नहीं बनेगी, उतनी उसकी कसौटी होगी। इस कसौटी को ध्यान में रखकर हमें टेक्नोलॉजी का नित्य नई तालीमकरण करना पड़ेगा। नयी तालीम को विनोबाजी ने नित्य नयी तालीम कहा है। नयी तालीम यदि नित्य नयी तालीम नहीं होती तो वह नयी तालीम भी पुरानी नयी तालीम हो जाती है। नयी तालीम को नित्य नयी तालीम होना ज़रूरी है, आवश्यक है।

गांधीजी के वर्धा शिक्षा सम्मेलन में दिये गये भाषण का विवेचन करते हुए डॉ. जाकिर हुसैन कमेटी ने नयी तालीम के तीन माध्यमों का उल्लेख किया, उद्योग, समाज और प्रकृति। इन तीनों को हमने माना कि ये शिक्षा के माध्यम हैं, और इनका उपयोग भी है। कुछ वर्षों तक नयी तालीम का काम करने के बाद मालूम हुआ कि ये तीनों नयी तालीम के तीन बाह्य माध्यम हैं और नयी तालीम के तीन आन्तरिक या आध्यात्मिक माध्यम हैं, प्रीति, मुक्ति और अभिव्यक्ति। ये छह माध्यम जब, एकत्रित नहीं, एक होते हैं तब नयी तालीम बनती है। जाकिर हुसैन कमेटी ने विशेषकर नयी तालीम की पद्धति के विषय में एक विशेष शब्द का प्रयोग किया था, 'कोरिलेशन' यानी 'समवाय' और एक परिणाम की आशा रखी गयी और वह था

‘स्वावलम्बन’। इस तरह तीन बाह्य माध्यमों (उद्योग, समाज, प्रकृति) एवं तीन आंतरिक माध्यमों (प्रीति, मुक्ति और अभिव्यक्ति) के साथ समवाय एवं स्वावलम्बन, इन सबका जब एक साथ विचार होगा, तो नयी तालीम होगी।

यूनेस्को ने दुनिया के कई देशों में शिक्षा की परिस्थिति का अध्ययन करके शिक्षण कैसा होना चाहिए, इस सम्बन्ध में जो ग्रन्थ तैयार किया, उसका शीर्षक रखा ‘लर्निंग टू बी’। उपर्युक्त वर्णित छह माध्यम, समवाय एवं स्वावलम्बन, जब यह सब एक होंगे तो उसमें से शायद ‘लर्निंग टू बी’, जीवन कैसे जीना, यह सीखना अर्थात् नयी तालीम उसमें से निकलेगी।

यूनेस्को की उसी कमेटी के एक ईरान के मेम्बर जब वेङ्छी का प्रयोग देखने आये तो जो उन्होंने देखा, उसमें से उन्हें लगा कि वे लोग जो विचार करते थे और गांधी जो विचार करता था उसमें बहुत साम्य था। भाषा भेद हो सकता है। परिस्थिति के अनुसार पद्धति में भी भेद हो सकता है। लेकिन तत्त्व में भेद नहीं था। पद्धति या तंत्र देश और काल के अनुसार बदलते हैं, बदलना आवश्यक है। पचास साल पहले जो भी नयी तालीम थी, वही नयी तालीम अगर आज रिपीट करेंगे, तो मैं यह मानूंगा कि नयी तालीम को समझा नहीं गया। लेकिन पचास या सौ साल पहले भी नयी तालीम होती थी, नयी तालीम ने जीवन द्वारा शिक्षा की बात कही थी, वही बात अगर छोड़ दी जाय, तो चाहे जितने नये-नये शिक्षा के प्रयोग उसमें रखेंगे, तो भी उसे मैं नयी तालीम मानने के लिए तैयार नहीं हूँ। इसलिए मैंने पहले ही कहा है कि तंत्र और तत्त्व का विवेक अवश्य करना होगा। और वह जो तत्त्व है वह इस बात पर निर्भर है कि व्यक्ति और समाज का विकास मानवीय मूल्यों की

दिशा में हो। ग़लत दिशा में परिवर्तन नहीं। परिवर्तन तो हमने 2002 में गुजरात में भी देखा, लेकिन वह परिवर्तन नहीं। जहां मानवीय मूल्यों का विकास हो, उस दिशा में परिवर्तन यदि नयी तालीम का विद्यालय या छात्र कर सकता है, तब समझना चाहिए कि वह नयी तालीम हुई। इसलिए जहां नयी तालीम के तीन आंतरिक माध्यमों प्रीति, मुक्ति एवं अभिव्यक्ति का अभाव होगा वहां चाहे जितना उद्योग चलता होगा, मैं उसे नयी तालीम मानने के लिए तैयार नहीं होऊंगा। जहां छात्र और गुरु के बीच में, जहां स्कूल और ग्राम समाज के बीच में, जहां कुलगाम और पूरे समाज के बीच में, प्रीति नहीं पैदा होती होगी, वह नयी तालीम का वातावरण बनानेवाला स्कूल नहीं माना जायेगा।

इसी तरह अगर नयी तालीम का विद्यार्थी, ‘रिकगनिशन’, सरकारी मान्यता खोजता रहे और हमें अंग्रेजी क्यों नहीं सिखाते यही रोता रहे, तो हमें यह समझना चाहिये, कि हमने उनके सामने जो नयी तालीम का नमूना पेश किया, वह ‘स्टेटसकोइस्ट’ यथास्थितिवादी था, नयी तालीम नहीं। जो समाज में क्रांति नहीं ला सकती वह नयी तालीम नहीं है। जो व्यक्ति में विकास नहीं ला सकती, वह नयी तालीम नहीं है। हमें इन दो कसौटियों पर नयी तालीम को जांचना पड़ेगा। इसलिए देश और काल तथा टेक्नोलॉजी का जो ज्ञान मनुष्य को मिला है, उसके आधार पर उद्योग को विकसित करना पड़ेगा। जब मैं देश और काल कहता हूँ तो इसका तात्पर्य है देश की जनसंख्या, ज़मीन का प्रमाण इत्यादि से है और हमें उसे भी देखना पड़ेगा। उसके लिए कौन-कौन सी टेक्नोलॉजी उपयुक्त है, “अप्रोप्रियेट टेक्नोलॉजी” है उसका विचार भी करना पड़ेगा। इसके साथ ही उद्योग का चुनाव इस बात पर भी निर्भर करेगा कि

उसमें सृजनात्मकता कितनी है। उद्योग के चयन में यदि सृजनात्मकता पर विचार नहीं होता है, तो वह नयी तालीम का उद्योग नहीं है। उद्योग में से बच्चे को सृजनात्मकता भी मिलनी चाहिए।

नयी तालीम के दूसरे माध्यम 'समाज' के संदर्भ में मुझे लगता है कि इस माध्यम की असली कसौटी शिक्षकों के पारस्परिक व्यवहार में है। आपस में कितनी होड़ है, कितनी टांग-खिंचाई है, मैनेजमेंट है और उनका कितना संबंध है और उनमें कितना सहयोग है। "मैं जो कहता हूँ वही सही है, बाकी जो कहते हैं उनमें समझदारी ही नहीं है।" यह जहां होता है और वहां जिस अहिंसक समाज की रचना के लिए नयी तालीम को सामाजिक प्रयोग करने की आवश्यकता है, वह प्रयोग करने में हम शिक्षक ही स्वयं निष्फल सिद्ध होते हैं। इसलिए नयी तालीम के शिक्षक, छात्र और पालकों में दोष देखने की बजाय, पहले हम थोड़ा अपने को देखें उनमें दोष नहीं, ऐसा मैं नहीं कहता, लेकिन पहले थोड़ा अपने में देखें। यदि मनुष्य की प्रवृत्ति में दोष हो तो उसे दूसरे में खोजने की प्रवृत्ति ज्यादा होती है। और उसे जो खोजता है, वह असली खोज नहीं कर पाता है। इसलिए अपने में कहां दोष हैं, उसे पहले ही देखना पड़ेगा, कि क्या हम साथी शिक्षक वास्तव में 'डेमोक्रेटिक' हैं या एक आचार्य है, जो सबके सिर पर बैठा है और अपने नीचे के लोगों को मूल्य के नाम पर दबाता है, वह फिर उसके नीचे के लोगों को दबाता है। ऐसा ही अगर हम करते हैं, तो वही समाज हम जी रहे हैं, जिस समाज को हम बदलना और तोड़ना चाहते हैं।

हम लोगों ने वेड़छी में प्रयोग किया था। हमारे स्कूल में आचार्य तो थे, लेकिन तीन महीने के बाद आचार्य, 'प्यून' या चपरासी बनते थे या स्टोरकीपर बनता था या दूसरा बनते थे। 'रोटेटिंग

रेस्पॉसिबिलिटी— थी। शुरू के वर्ष में थोड़ा बिगड़ता भी था, लेकिन इससे सामूहिकता का भाव उन सबमें बहुत बढ़ता था। सारे देश में नयी तालीम के उतने प्रयोग नहीं हुए, जितने केवल गुजरात में हुए। आज भी गुजरात में कुछ बहुत अच्छे नयी तालीम के विद्यालय चल रहे हैं। लेकिन वह जो चलता है उसमें, कम से कम नारायण देसाई को दम नहीं लगता। उसका मुख्य कारण यह है कि गुजरात के करीब-करीब सौ प्रतिशत, उनमें हमारी जैसी एक-आध संस्थाएं अपवाद होंगी, सबके सब शासनाधारित संस्थाएं ही हैं। जब शासन के आधार पर काम शुरू होता है, तो सरकार के लोग कहते हैं कि आपके जैसे लोगों की हम क्यों मदद नहीं करेंगे, आपके जैसे शिक्षक हमें कहां मिलेंगे और तुरन्त हमारे पास आते हैं। पर दूसरी ही मीटिंग में उनके कानून हमारे ऊपर सवार हो जाते हैं।

नयी तालीम का तीसरा मूल्य या माध्यम 'प्रकृति का है। हम लोग करीब-करीब जाने-अनजाने "ययाति संस्कृति" की ओर भेड़िया-धसान कर रहे हैं। ययाति के पांच बेटे थे और वह खुद राजा था। केवल राज्य से संतोष नहीं हुआ। चिरयौवन की लालसा में उसने अपने पांचों बेटों से 20-20 साल की जवानी मांग ली। वह सौ साल जी गया। परन्तु उसके बेटे पहले ही समाप्त हो गये। हम आज की प्रकृति का उपभोग, ययाति सांस्कृति की तरह से करते हैं, आनेवाले कल का विचार नहीं करते हैं। उसी के जवाब में पिछले लगभग 20 वर्षों से पर्यावरणवादी लोगों की ओर से एक शब्द चला है 'सस्टेनेबल' अर्थतंत्र। प्रकृति के साथ 'सस्टेनेबल' संबंध। विद्यालय के छोटे से खेत या बगीचे में बच्चे जो 'सस्टेनेबिलिटी' सीखेंगे, उन्हें इस प्रकृति के साथ भी 'सस्टेनेबिलिटी' सिखानी

पड़ेगी।

नयी तालीम के बाह्य माध्यमों की तरह ही 'समवाय' पर भी गम्भीरता से विचार करना आवश्यक है। वर्धा सम्मलेन और बाद में नयी तालीम के नाम से जो काम चला, वहां भी 'समवाय' शब्द, मैं खूब सुनता रहा। एकदम उसका वानरीकरण हो गया था, यहां तक समवाय हम लोगों ने किया था। उसका क्या अर्थ किया गया? उद्योग के साथ शिक्षा को जोड़ दो और शिक्षा का मतलब हमने जो तय की है वह शिक्षा। 'समवाय' के वानरीकरण का एक उदाहरण देखिये :- इंस्पेक्टर ने विद्यार्थियों से पूछा कि 'तुम क्या कर रहे हो?' विद्यार्थी ने कहा कि हम कताई कर रहे हैं। इंस्पेक्टर ने पूछा कि तुम किससे कात रहे हो? विद्यार्थियों ने कहा कि हम तकली से कात रहे हैं। इंस्पेक्टर : तकली से कैसा सूत निकलता है? विद्यार्थी : तकली से पतला सूत निकलता है। इंस्पेक्टर को जवाब चाहिए था कि मोटा सूत निकलता है। इसलिए पूछा कि मोटा सूत कात सकते हो या नहीं? विद्यार्थी ने कहा, 'हां' कात सकते हैं। मोटे सूत से क्या होता है? चादर बनती है या कुछ और भी बनता है। उसको जवाब चाहिए था कि कोट बनता है, तो उसने कहा कि कोट बनता है कि नहीं? तो बच्चे ने कहा कि 'हां' कोट बनता है। इंस्पेक्टर : कोट कौन पहनता है? तो विद्यार्थी ने कहा, "साहब पहनते हैं।" इंस्पेक्टर ने पूछा कि और कौन-कौन पहनता है? विद्यार्थी ने कहा कि मेरा बाप पहनता है। इंस्पेक्टर : राजा पहनता है या नहीं? विद्यार्थी : राजा भी पहनते होंगे। तो ठीक, ऐसे एक राजा की कहानी तुमको मैं सुनाता हूं। तकली के साथ राजा का समवाय हो गया। ऐसे समवाय, मैंने नयी तालीम के अध्यापन मंदिर में देखे हैं, उसके आधार पर कह रहा हूं, यह समवाय नहीं समवाय का वानरीकरण है।

जहां, सहज काम करते हुए, यह प्रतीत भी न हो कि हम कुछ नया सीख रहे हैं और बच्चे शिक्षित हो जायें, उस पद्धति को समवाय कहा जायेगा। सहज प्राप्त शिक्षा समवाय कहा जायेगा। और वैसा समवाय हो सकता है, उसके भी अनेक प्रयोग हुए हैं। यह हो सकता है। लेकिन यदि आप नयी तालीम को सिर्फ एक शिक्षण पद्धति बनायेंगे, तो उस पद्धति में उपर्युक्त उदाहरण की तरह के समवाय की ओर खिसक जाने की बहुत संभावना है। इसलिए मैं चेतावनी की नोट देना चाहता हूं।

अब स्वावलंबन को भी समझ लें। आज यदि आप स्वावलंबन को पैसों में नापेंगे, तो आज के समाज में स्वावलंबन होनेवाला है नहीं। क्योंकि आज की अर्थव्यवस्था, वित्त व्यवस्था, ऐसी अन्यायपूर्ण है कि जो मेहनत करता है, उसे कम मिलता है और जो मेहनत नहीं करता, उसे अधिक मिलता है। ऐसी व्यवस्था है। इसलिए स्वावलंबन को आप 'काइंड' (वस्तुओं) में देखिये। बच्चे को इतनी ज़रूरत है, कितना पैदा हुआ? खाने लायक मिला कि नहीं, पहनने लायक कपड़े पैदा हुए कि नहीं। इसको 'काइंड' में देखेंगे, तब तो आप स्वावलंबन के टेस्ट में जा सकेंगे। हां, पूरी व्यवस्था ही बदलेंगे, तो शायद हो। पूरी व्यवस्था बदलना है, यह लक्ष्य मन में अवश्य रखिये। लेकिन जब आप रोज़-ब-रोज़, महीने, छह महीने में मूल्यांकन करते हैं, तो रुपये पैसों में मत कीजिये। विनोबा ने तो बहुत साल पहले ही रुपये के लिए एक विशेषण दे दिया था, कि रुपया 'लफंगा' है, क्योंकि वह आज एक बोलता है, कल दूसरा बोलेगा। आज डालर के चार रुपये हैं, कल चालीस रुपये होंगे। तो लफंगा नहीं, तो क्या हुआ? इसलिए स्वावलंबन को मेहरबानी करके वर्तमान अर्थव्यवस्था के आंकड़ों में मत

देखिये। स्वावलंबन को यदि वस्तु के रूप में देखेंगे, तो स्वावलंबन का हेतु पूरा करने की दिशा में आगे बढ़ेंगे।

नयी तालीम के तीन बाह्य माध्यमों, समवाय व स्वावलम्बन के बाद अब मैं आता हूँ इसके तीन आंतरिक माध्यमों, मुक्ति, प्रीति और अभिव्यक्ति पर। इनमें मुक्ति को मैं पहले लेता हूँ। मुक्त वातावरण और मेरा तो मानना है कि मुक्ति का आरम्भ ही होगा नौकरी-मुक्ति से। अगर आप नयी तालीम में से नौकरी को मुक्ति कर दें, तो मैं मानता हूँ कि नयी तालीम ने एक बहुत बड़ा किला जीत लिया। क्योंकि आज तो नयी तालीम पर सबसे ज़्यादा अगर कोई विचार हावी है, तो वह है नौकरी का विचार। अगर हम नयी तालीम को नौकरी मुक्त करा सकें और यह समझा सकें कि नौकरी को तो हम कनिष्ठ मानते हैं। किसी को एकदम ज़रूरत पड़ जायेगी तो वह करेगा, लेकिन हम मानते हैं कि अपने पैरों पर खड़े रहना ही अच्छा है। इतना अगर हम सिखा पायें, तो बड़ा काम होगा। और उसको सिखाने के लिए टेक्नोलॉजी को जितना आपको बढ़ाना होगा बढ़ाइये, कोई हर्ज नहीं। टेक्नोलॉजी आपको रोक रखे, यह नहीं चलेगा, उसको बढ़ाइये। लेकिन यदि नौकरी से आप अपने छात्र को मुक्त करेंगे, तो नयी तालीम टिकेगी। अन्यथा आप मैकाले के रास्ते, मैकाले ने नौकरी के लिए ही तो स्कूल शुरू किए थे, पर ही जायेंगे। और अब तो वह मैकाले का ही रास्ता नहीं रह गया है बल्कि मौत का रास्ता बन गया है, इसलिए मुझे ऐसा लगता है, वह ज़्यादा भयानक हो गया है।

नयी तालीम के शिक्षकों को यदि मुक्ति का मंत्र सीखना और सिखाना है, तो अपने त्यागपत्र का कागज़ हमेशा अपनी जेब में तैयार रखना पड़ेगा।

यदि वह अपना त्यागपत्र देने में तैयार नहीं है, नौकरी के लिए शासन की ओर, फाउंडेशन की ओर या किसी दाता की ओर ताकता रहेगा, तो वह नौकर ही रहेगा, वह मुक्ति नहीं सिखा सकेगा। मुक्ति के मूल्य का पालन करने में सचमुच ही हमें धक्के लग जायें, यहां तक कि हमें सहन करने की मानसिक तैयारी भी रखनी पड़ेगी। क्योंकि हमारे मन में कुछ निश्चित मूल्य होते हैं उनको उत्तमोत्तम तरीके से सिखाना चाहते हैं। लेकिन क्या सिखाना चाहते हैं? वही जिसको हमने अच्छा समझा है, वह सिखाना चाहते हैं। बहुत संभव है कि शायद अच्छी शिक्षा, जिसको हम स्वयं उत्तम शिक्षा मानते हैं, उसके परिपेक्ष से और उसके क्षेत्र से कहीं बाहर ही हो। तो इसके लिए भी नयी तालीम के शिक्षक को भी तैयार रहना होगा।

मुक्ति के बारे में मैं एक थोड़ी सी विरोधी बात कर रहा हूँ, ऐसा समझ लीजिए। लेकिन चूंकि, मैं स्वयं एक शिक्षक रहा हूँ, इसलिए इतना ध्यान रखिये कि, यदि आप आज सचमुच मुक्ति का प्रयोग करना चाहेंगे, तो सबसे पहले बच्चे आपकी परीक्षा लेंगे, उसके लिए नयी तालीम के शिक्षक को तैयार रहना होगा। मैं, सेवाग्राम के उस समय चल रहे 'आनन्द निकेतन' के एक कमरे में चौथे दर्जे का एक वर्ग लेता था। एक दिन जैसे ही मैं दरवाज़ा खोल कर अंदर घुसा, तो दरवाज़े के पीछे खड़े लड़के ने डस्टर से मेरे मुंह को पोत दिया। घुसते ही स्वागत। बच्चा तो यह देखना चाहता था कि, यह कहता है कि मैं मुक्ति देता हूँ, कहता है कि मुझे गुरुजी नहीं भाई कहो, तो यह भाई कहने का आग्रह रखता है। लेकिन मुंह पर डस्टर पोतने पर गुस्सा करता है कि नहीं, जरा देखू तो सही, जांचू इसको। मैंने कहा, अच्छा कल शाम को मैं बोर्ड को साफ़ करना भूल गया था शायद, तुमने

अच्छा साफ़ कर दिया। उसको अपेक्षा थी कि, मैं कुछ कहूंगा और यदि मैंने कुछ और कह दिया तो वह सोचने लगेगा। तो मुक्ति के इस प्रयोग में बच्चा आपको जांचेगा ज़रूर।

इसी तरह मुम्बई से एक भाई अपने बेटे, सुलतान को लेकर वेड़छी आये और आते ही कहा कि यह आपके स्कूल में पढ़ेगा, यह बड़ा बदमाश है। अपने पुत्र का पहला ही परिचय, उसके भविष्य के शिक्षक को दिया कि बड़ा बदमाश है। और मैंने सीधे ही कहा कि मुझे तो बदमाश नहीं दिख रहा है। वह बार-बार कहते रहे बदमाश है और मैं यह सिद्ध करने की कोशिश कर रहा था कि वह ऐसा दिखता तो नहीं है। बच्चा सोच रहा है ये बोल रहे हैं, सच बोल रहे हैं कि नहीं। उस बच्चे ने सत्यवाला परीक्षण तो नहीं किया पर, यह देखा कि यह क्या करता है। एक दिन पढ़ाई के बीच की छुट्टी के समय, बच्चे इधर-उधर खूब दौड़ भाग कर रहे थे, तभी फटाक की आवाज़ आई और कमरे के वेंटीलेटर का एक कांच फूटा। क्या है, क्या है, कहते हुए सब लोग दौड़ते हुए गये। पता चला कि सुलतान ने पत्थर मारकर कांच फोड़ा है। मैंने पूछा, तुमने पत्थर मारा था? उसने कहा, हां। कितने पत्थर मारे थे? उसने कहा एक मारा था। मैंने कहा तुम्हारी 'ऐम' यानी निशाना लगाने की ताकत अच्छी है। एक ही पत्थर मारा तो कांच फूट गया। उसको आशा थी कि मैं थप्पड़ मारूंगा। उसके बदले मैंने कहा कि तुम 'ऐम' अच्छी करते हो। वह चुप रहा। दूसरे दिन उसी समय दूसरा कांच फूटा। मैंने कहा नियमितता भी अच्छी है। तीसरा कांच फोड़ने की अपनी आर्थिक स्थिति नहीं थी कि तीसरे दिन और उस प्रयोग को, जारी रखूं। इसलिए सुलतान से कहा, देखो यह उमा (उस समय मेरी बेटी उमा की उम्र

तीन या साढ़े तीन साल की थी) तुम्हारी छोटी बहन है। उसने कहा, हां है। फिर मैंने कहा कि उमा को संभालने का काम, मैं तुम्हारे सुपुर्द करता हूं। तो फिर वह उसको संभालता था। सब बच्चे छोटी-छोटी बाल्टियां एवं रस्सी लेकर कुएं पर पानी भरने जाते थे। अब पहले दर्जे के बच्चे सुलतान भाई के नेतृत्व में गाना गाते हुए कुएं पर जाते थे। सुलतान भाई के पास अगर छोटी बहन को संभालने की ज़िम्मेदारी नहीं होती तो, यह संभव था कि कुएं के किनारे जाकर वह किसी बच्चे को धक्का ही दे देता। लेकिन छोटी बहन को संभालना था कि वह कुएं में गिर न जाय, इसलिए वह दूसरों को भी दूर रखता था। वह तो दूर रहता ही था, लेकिन दूसरों को भी दूर रखने लगा। इसलिए मैंने अपनी बेटी तक की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी उस तरह के बच्चे के सुपुर्द करने तक, नयी तालीम के शिक्षक की स्वतंत्रता के लिए उस हद तक प्रीति होनी चाहिए।

'प्रीति' के संदर्भ में अक्सर लोग शिकायत करते हैं कि मैं तो कोशिश करता हूं, लेकिन वह मुझे प्यार नहीं करता। इतना समझ लीजिए कि यह प्रक्रिया चाहे जो हो, इसका प्रेम के साथ कोई संबंध नहीं है, क्योंकि प्रेम मांगता नहीं वरन देता है। अगर हमारा प्रेम मांगने का होगा, तो हम विद्यार्थी से मांगते ही रहेंगे, शायद देना भूल जायेंगे। इसलिए प्रीति के संबंध में देनेवाली प्रीति के संबंध में कितना आगे तक सोच सकते हैं, वह हमें देखना, सोचना पड़ेगा।

'मुक्ति एवं प्रीति' के विचार के साथ ही नयी तालीम के काम में अभिव्यक्ति भी होनी चाहिये। वह अभिव्यक्ति चित्रकला और संगीत से तो होगी ही, लेकिन वह बच्चों की अंगुलियों से प्रकट होती होगी, अपने काम के द्वारा। वह ज़मीन से प्रकट

होती होगी, अपनी खेती के द्वारा, वह मकानों से प्रकट होती होगी, अपने काम के द्वारा। अर्थात् वह अभिव्यक्ति पूरे जीवन में अलग अलग प्रकार से प्रकट होनी चाहिये, उसे हम कहेंगे अभिव्यक्ति। नयी तालीम की अभिव्यक्ति वह होगी, वह नहीं जो आजकल स्कूलों में, खासकर जब कोई बाहर से मेहमान स्कूल देखने के लिए आए या कोई उत्सव-त्योहार हो तब, अनावश्यक प्रदर्शनात्मकता होती है, जिसको 'विंडोड्रेसिंग' कहते हैं, अच्छा दिखाओ। यह अतिप्रदर्शन अभिव्यक्ति नहीं है।

इसलिए अभिव्यक्ति के तत्त्व को ज़रा ठीक से समझ लें। एक बार गुजराती के एक सुप्रसिद्ध कवि उमाशंकर जोशी हमारे विद्यालय में आये। तो विद्यार्थियों ने कहा कि कवि सम्मेलन करेंगे। शर्त यह रही कि एक कविता विद्यार्थी कहेंगे, दूसरी कविता उमाशंकर जोशी को कहनी होगी, वह भी उनके बड़े संग्रह में से, बच्चे समझ सकें, ऐसी कविता ढूँढकर कहनी होगी। अच्छा कवि सम्मेलन हुआ। उमाशंकर जोशी ने जाते समय कहा कि इन बच्चों की कुछ कविताएं ऐसी थीं कि उनके नीचे मैं अपने हस्ताक्षर खुशी से कर देता। मैंने पूछा कि उसमें क्या गुण था। तो बोले कि उसमें यह गुण था कि उसमें शिक्षक ने काट-छांट नहीं की थी, यह गुण था। वर्ना तो हम उसका अनुप्रास मिला देते और उसका छंद भी मिला देते। इसी तरह चित्र की बात है। मेरी नतनी जब वह स्कूल में गयी, तब तक उत्तम चित्र बनाती थी। नयी तालीम के स्कूल में जाने के बाद चित्र बनाना भूल गयी। क्योंकि वह अनुकरण करना सीख गयी, चित्र बनाना भूल गयी। तो यह जो 'क्रियेटिविटी', सृजनात्मकता है, यह नयी तालीम

का एक अनिवार्य गुण है। वह कहीं अतिप्रदर्शन में छिप न जाये, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। साथ ही यह भी ठीक है कि सभ्य समाज बने, इसलिए, नयी तालीम विद्यालय से सुसभ्य नागरिक तैयार हों, ऐसा उद्देश्य रहे। पर यह ध्यान रहे कि सिविल सोसायटी अहिंसक समाज की ओर जाने का पहला कदम है, आखिरी कदम नहीं। पहला कदम है सिविल सोसायटी बनाना, लेकिन हमारा उद्देश्य तो उससे आगे जाकर, अहिंसक समाज रचना तक पहुंचने का रखना होगा, जिसमें कम से कम शासन एवं सम्पूर्ण शोषण मुक्ति, इन दोनों को ध्यान में रखकर चलना होगा और इस तरह चला जा सकता है। इसलिए मेरा इतना ही निवेदन है कि नयी तालीम को केवल एक शास्त्र मत रहने दीजिये। शास्त्र भी बहुत आवश्यक है यह ठीक है, लेकिन नयी तालीम जितना शास्त्र है उतनी कला भी है। इसलिए शास्त्र और कला दोनों को साथ-साथ चलाइये। नयी तालीम को एक पद्धति न बनायें, बल्कि उसे एक जीवन शैली बनायें। अतः जिसे भी यह विचार पसंद आता है, तो किसी दूसरे का इंतजार मत कीजिये। गांधी ने हम लोगों को यदि कुछ सिखाया है, तो वह यह कि अच्छे काम का आरम्भ प्रथम पुरुष एकवचन से होता है, दूसरे पुरुष तक या तीसरे पुरुष तक जाना नहीं पड़ेगा। अपने से आरम्भ करना पड़ेगा। जिस आदमी ने कहा कि मैं मरने के बाद भी अपनी कब्र में करवटें लूंगा और आप लोगों को चैन से बैठने नहीं दूंगा। वह आदमी हमें चैन से कैसे बैठे रहने देगा। जिस दिन हम अपने आपसे नयी तालीम का आरम्भ करने का संकल्प करेंगे, उसी दिन से हम अहिंसक समाज रचना की दिशा में आगे बढ़ना प्रारम्भ कर देंगे।

साम्भार – नयी तालीम नया परिपेक्ष्य एन.सी.आर.आई, हैदराबाद।

नयी तालीम को आमंत्रण

★ रमेश धानवी

इस लेख में लेखक ने आज की परम्परागत शिक्षा व्यवस्था के दुष्परिणामों व उसके दुश्चक्र पर कटाक्ष करते हुए नए संदर्भ में बुनियादी तालीम की प्रासंगिकता और उसकी ज़रूरत को प्रतिपादित किया है।

मन करता है कि मैं नयी तालीम को आमंत्रित करूँ। मन यह भी करता है कि नयी तालीम के पुनर्भवतरण की हम पूरी तैयारी करें। कहीं कोई ऐसी शाला खोलें जहाँ सारे दरवाजे और खिड़कियाँ खुली हों। पूरी धूप हो, रोशनी हो, मिट्टी हो, पानी हो, पेड़-पौधे हों, कहीं किसी कोने में कुछ औज़ार रखे हों, कहीं कोई करघा अपने ताने-बाने के साथ बुलाता खड़ा हो, इधर-उधर हर तरफ़ चरखे दिख जाते हों और यह सारी सामग्री बालकों को खुला आमंत्रण देती लगती हो। यह कुछ ऐसी सामग्री जो किसी कक्षा को नयी तालीम की कक्षा बनाती हो, यहाँ पर शिक्षा किसी बंद कमरे में सम्पन्न नहीं होती है। खुले वातावरण में बालक अपने आप कोई उद्यम करते हुए अपने ही ज्ञान को अनावृत करते हैं। यहाँ ज्ञान बच्चों के हुनर की कमाई होता है। यहाँ ज्ञान किसी और का दिया हुआ कोई तोहफ़ा नहीं होता।

मुझसे कोई पूछ सकता है कि मैं नयी तालीम को क्यों आमंत्रित करना चाहता हूँ? उससे पहले कोई यह भी प्रश्न कर सकता है कि नयी तालीम आखिर है क्या? कोई तालीम जो पचास बरस पहले शुरू की गयी थी वह भला आज भी नयी तालीम क्यों मानी जाती है? ऐसे कुछ और भी प्रश्न हो सकते हैं। प्रश्न विचार के लिए अच्छे होते

हैं। शिक्षा की बात विचार के साथ ही शुरू हो सकती है। विचार करते हुए हम पाते हैं कि नयी तालीम, नयी इसलिए थी कि वह बोदी तालीम की जगह लेने के लिए रची गयी थी। बोदी तालीम वो थी जो अंग्रेज़ों ने भारत में पसारी थी। बहुत सोच-समझ के साथ इसका फैलाव किया गया था। मक़सद यह था कि अंग्रेज़ों को अपने देश पर राज करने के लिए बहुत सारे अहलकारों और अफ़सरों की ज़रूरत थी। सो तो पूरी हुई थी, मगर इस तालीम का बोदापन आज़ाद भारत में भी स्वतः सिद्ध हो गया था। तभी यह सोचा गया था कि देश में स्वतंत्र, स्वाभिमानी और स्वावलम्बी नागरिक बनाने के लिए किसी नयी तालीम की शुरुआत करनी चाहिए। तब नयी तालीम की शुरुआत जगह-जगह हो भी गयी थी। उसका स्वागत भी हुआ था। मगर अपने ही देश के नौकरशाहों को यह नयी तालीम गवारा नहीं गुज़री थी। उनको अपने पांवों की ज़मीन कहीं खिसकती दिखी थी। यही वजह थी कि बहुत जल्दी ही नयी तालीम को न तो पांव जमाने का कोई मौक़ा दिया गया और न ही उसे पनपने दिया गया।

आगे विचार करते हैं, तो पाते हैं कि आज़ाद देश को भी नयी तरह के गुलामों की ज़रूरत थी। वह

★ राजस्थान के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री एवं साहित्यकार हैं साथ ही "अनौपचारिका" के संपादक हैं।

जरूरत ठीक वैसी ही थी जैसी अंग्रेजों को थी। सच यह था कि हमने राज बदला था, राजे महाराजे बदले थे, मगर न हम स्वतंत्र हुए, थे, न स्वराज आया था और न हमारा समाज बदला था। आज़ादी की लड़ाई की ओर मुड़कर देखते हैं तो हम पाते हैं कि महात्माजी की सारी जद्दोजहद राज के साथ समाज बदलने की थी। स्वयं उन्होंने अपने कुछ मूल्यों को जीकर एक मार्ग प्रशस्त किया था। उन्होंने हमें बता दिया था कि आज़ाद भारत का नया समाज कितना स्वाभिमानी होगा, कितना स्वतंत्र और स्वावलम्बी होगा? उद्यम और शारीरिक श्रम उनके महामंत्र थे। वे समाज को भिखारी अथवा नौकर अथवा गुलाम नहीं बनाना चाहते थे। वे इस समाज को न सोचनेवाला, न विचारनेवाला कोई अचेतन अथवा निष्क्रिय समाज नहीं बनाना चाहते थे। नये भारत के नये समाज का उनका सपना एक सर्वथा जागृत, सर्वथा विचारवान, सर्वथा विवेकशील एवं अपने रोम रोम में चेतन समाज का सपना था। वे हर व्यक्ति का इतना तो विस्तार कर देना चाहते थे कि कोई कूप मण्डूक न रहे, कोई लकीर का फकीर न बने और कोई भी अंधविश्वासी बनकर समाज की भौंडी कुरीतियों में फंसा न रह जाये। वे स्वतंत्रता से जीनेवाला और दूसरों के लिए स्वतंत्रता की रचना करनेवाला समाज बनाना चाहते थे, ऐसा उन्होंने अपने जीवन में अपने साथियों के बीच रहकर करके दिखाया था। आज़ाद भारत में नयी तालीम की शुरुआत इसीलिए की गयी थी कि हम महात्माजी के सपनों का समाज बना सकें और यह देख अपनी स्वतंत्रता को सच्चे अर्थों में जीना सीख सकें।

यह बात आज भी खरी है। आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। आज भी हमें नयी तालीम की जरूरत है। हमें फिर से नये संदर्भों में नयी

तालीम को परिभाषित भी करना होगा और उसकी पुनर्व्याख्या भी करनी होगी। पहले तो हमें नये सिरे से ही समझना होगा कि नयी तालीम का मूल स्वरूप क्या था? ऐसा जान लेने के बाद नयी तालीम के शास्त्रीय स्वरूप को बदले बिना नयी तालीम के नये स्वरूप की व्याख्या करनी होगी।

देखना हमें यह है कि नये संदर्भ में है क्या? नये समाज पर नज़र दौड़ाते ही पता लग जायेगा कि आज के भारत का समाज शहरी सभ्यता की ओर भागता हुआ समाज है। बाज़ारवाद की नयी दौड़ में हमारा समाज शरीक हो गया है। उसमें उपभोक्तावाद भी है और पूंजीवाद की प्रधानता तो है ही। आज महात्माजी का यह संदेश बहुत प्रासंगिक नहीं लगता है कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है। इस संदेश की सच्चाई सर्वथा असंदिग्ध है मगर फिर भी गांवों को निगल जानेवाली शहरी सभ्यता सुरसा के मुंह की तरह फैलती-पसरती चली जा रही है। ऐसी स्थिति में गांव अपनी पहचान खो रहे हैं और उनकी आत्मा शहरों में भटकती दिखती है। हमारे अपने देश की मौलिक पहचान को बचाये रखने के लिए यह ज़रूरी है कि एक-दूसरे के लिए जीने की भावना की रक्षा की जा सके, उतना ही हमें कर लेना चाहिए। ऐसा तभी संभव हो सकता है जब हम नयी तालीम को पुनः अवतरण के लिए आमंत्रित करें। तालीम के वर्तमान दुश्चक्र से इस समाज को बचा लें।

वर्तमान तालीम का दुश्चक्र यह है कि वह प्रतियोगिता को बेतहाशा तवज्जोह दे रही है। इस तालीम में एक-दूसरे को पीछे छोड़ देने की होड़ मची है। किसी के भी कंधे पर पांव रखकर ऊपर चढ़ जाने की होड़ मची है। इस होड़ में अपने साथ रहनेवाले और साथ जीनेवाले तमाम मित्रों की निरन्तर उपेक्षा अवश्यम्भावी है। दूसरों की

उपेक्षा तो जैसे कोई युग धर्म हो गया है। मात्र उपेक्षा ही नहीं है अपितु तिरस्कार भी है। अपमान भी है और अवमानना भी है। ऐसी स्थिति में कभी किसी समाज की रचना हो नहीं सकती। समभाव और समादर के बिना कभी कोई समाज बनता भी नहीं। एक अच्छा स्वतंत्र समाज बनाने के लिए हमें नयी तालीम को आमंत्रित करना ही पड़ेगा। वर्तमान समाज की और वर्तमान राज की दूसरी सच्चाई यह है कि हिंसा यहां सर्वमान्य हो गयी है। अहिंसा के प्रति हमारी आस्थाओं को ठेस लगी है। देश का हर नेता चाहे वह छोटा हो या बड़ा हथियारों की सुरक्षा में जीना अपनी शान समझने लगा है। घरेलू स्तर पर भी हथियार रखने की मांग निरन्तर पनप रही है। परस्पर हिंसा चाहे वह शारीरिक हो अथवा मानसिक लगातार बढ़ रही है। वैसे भी हमारा समाज निरन्तर परपीड़क समाज बनता जा रहा है। सुखदेव अब केवल नामों के रह गये हैं बाकी तमाम लोग दुखदेव बनने में अपना गौरव समझते हैं। ऐसी स्थिति में नयी तालीम हमारे बचाव में खड़ी हो सकती है। ज़रूरत उसे आमंत्रित करने की है और उसके अवतरण के लिए उचित वातावरण बनाने की है।

वर्तमान तालीम हमें श्रम से तो दूर रखती ही है, मगर साथ ही हम पैदल चलना तक भूल गये हैं। चारों तरफ़ वाहनों का हाहाकार है। मशीनों का बोलबाला है और यह सब हमारे वर्तमान जीवन का अंग बन गया है। हम छोटे से छोटे काम के लिए किसी यंत्र की तलाश में रहते हैं। रसोई में छाछ बनाने के लिए मथनी का स्थान भी अब मिक्सी ने ले लिया है। चूल्हा तो परावलंबी हो ही गया है। ऐसी स्थिति में हम निरन्तर एक निरीह जीवन जीने को अभिशप्त हो गये लगते हैं। स्वयं कुछ भी कर सकने की सामर्थ्य खो देने के बाद

हमने जो निरीहता ग्रहण कर ली है, उससे बचने के लिए नयी तालीम को आमंत्रित करना ज़रूरी लगता है।

बात केवल यहीं तक नहीं पहुँची है बल्कि बहुत आगे बढ़ गयी है। एक लम्बी तपस्या के बाद पायी आज़ादी भी अब हमें कोई बड़ी उपलब्धि प्रतीत नहीं होती। हम बहुत सहज भाव से विदेशोन्मुखी हो गये हैं और स्वदेश हमको अब अप्रिय लगने लगा है। अब झंडे की आन-बान पर मर मिटनेवाले लोग गली गली में नहीं मिलेंगे। अब अपने देश की आज़ादी के लिए अपनी पढ़ाई को न्योछावर कर देनेवाले नौजवान नहीं मिलेंगे। अब कोई 'रंग दे बसन्ती चोला' का गीत नहीं गायेगा। अब कोई जट्टा पगड़ी नहीं संभालेगा। सर देनेवाले सरदारों का ज़माना लद गया है। अब सिर्फ़ सिर झुकानेवाले सर बाकी बच गये हैं। या फिर सर-सर कहते नहीं थकनेवाले गुलाम लोग हमारे देश की शान हो गये हैं। यह किसी भी मुल्क के लिए सर्वथा अपमानजनक स्थिति है। यदि हमें देश की अस्मिता को और उसकी स्वतंत्रता को पुनः गरिमामय बनाना है तो फिर हमें नयी तालीम को आमंत्रित करना पड़ेगा। ज़ाहिर है कि नयी तालीम, तब न केवल हमारे स्वाभिमान की रक्षा करेगी, बल्कि हमारी स्वतंत्रता और आज़ादी को भी नया गौरव प्रदान करेगी। नए रंगों में नयी ऊर्जा भरेगी, नौजवानों की नस-नस में नया खून दौड़ेगा और नये हौसले के साथ देश के नौजवान अपने ही देश और समाज का नव निर्माण करने में संलग्न हो सकेंगे। तब वे नॉन-रिक्वायर्ड इण्डियन्स (एन.आर.आई.) बनना पसन्द नहीं करेंगे, बल्कि सच्चे भारतीय बनकर भारत में रहना पसन्द करेंगे। यह बात भी मैं, एक सपने की तरह कर रहा हूँ। एक आशा लिए मन में चलता हूँ कि सपने सच तो होते ही हैं।

साभार— नई तालीम नया परिप्रेक्ष्य, एन.सी.आर.आई. हैदराबाद।

नयी तालीम का उषाकाल-बापूजी का विद्यालय

★ प्रभुदास गांधी

इस लेख में लेखक ने गांधी द्वारा संचालित पाठशाला के अपने अनुभवों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। इस अनुभव को पढ़कर हम सहज ही गांधीजी की बुनियादी तालीम की दृष्टि व इसके शिक्षा शास्त्र की एक झलक पा सकते हैं।

प्रातःकाल दो घंटे तक खोदने का श्रम करने के बाद दो घंटे हमारी पढ़ाई चलती थी। खेतों के बीच, दो झोंपड़ों में हमारी पाठशाला थी। एक मिट्टी की कच्ची दीवारों से बना था और ऊपर फूस का छप्पर था। दूसरा, नालीदार टीन की चद्दरों से बना था। आधे-आधे, पौन-पौन घंटे में घंटियां होती थीं। शिक्षक बारी-बारी से हमारे वर्ग में आते थे। उनके आने पर खड़े होने की, हाथ जोड़ने की या उनके लिए रास्ता बना देने की तहज़ीब से हम अनजान न थे। पढ़ाने का काम पूरा करके जब एक शिक्षक वर्ग से चला जाता था तब हम लोग तुरन्त ही दूसरा सबक उठा लेते थे और एक-दूसरे से पूछकर अपनी पढ़ाई आगे बढ़ाते थे। शिक्षक आता तो एक बड़ा पूछनेवाला और बतानेवाला बनकर हम लोगों में घुल-मिल जाता था।



कई बार हमारे शिक्षक के पैर खेत के गारे से सने होते थे। उनकी आस्तीनें कोहनी तक मुड़ी हुई रहती थीं और अधबीच सिर पर आये हुए इस काम को निबटाकर खेत में अपने काम पर लौट जाने की जल्दी उनकी मुख-मुद्रा से झलकती थी।

गणित, गुजराती, गीता और व्याकरण हमारी पढ़ाई के मुख्य विषय थे। अंग्रेज़ी भी सब सीखते थे; किन्तु उसके लिए सबेरे का अनमोल समय खर्च नहीं किया जाता था। तमिल और हिन्दी बालकों को गुजराती के बदले अपनी-अपनी भाषा सीखने की सुविधा थी।

गणित के शिक्षक मेरे पिताजी थे, गुजराती के मगनलाल काका और जकी बहन तथा गीता के मगनभाई और बापूजी थे। बहुधा विषय और विद्यार्थी वही रहते थे, परन्तु शिक्षक बदलते रहते थे, मुख्य अध्यापक बापूजी स्वयं ही थे।

ऐसी पाठशाला शायद ही देखने में आती होगी, जहां पढ़ाई के समय प्रधान अध्यापक के पास पहुंचने पर उनके हाथ बेलन, करछुल आदि से शोभित दिखलाई पड़े। पाठशाला के उन दोनों घंटों में अधिकतर बापूजी रसोई के काम में व्यस्त रहते थे। अपने 25-30 बालकों में से किसी को कच्ची या जली हुई रोटी न मिले, इसकी उनको बहुत चिन्ता रहती थी। भोजन की घंटी होने पर रसोई आधी ही रह गयी हो, ऐसा मौका न आने देने के लिए वह स्वयं रसोई में लग जाते थे। इस प्रकार प्रधान रसोइया और प्रधान अध्यापक का दोहरा उत्तरदायित्व निभाना और डरबन आदि अन्य स्थलों से आनेवाले मुलाकातियों का स्वागत करना तथा उनके प्रश्नों का उत्तर देना यह सब साथ-साथ चलता था।

किसको क्या पढ़ाया जाय, किस-किस को एक साथ पढ़ाया जाय, संस्था के ज़रूरी काम से यदि कोई शिक्षक समय पर पढ़ाने न जा सके, तो उसके बदले कौन पढ़ावे इत्यादि निर्णय प्रतिदिन बापूजी ही करते थे। गणित के वर्ग में किस विद्यार्थी के कितने सवाल सही रहे, कितने ग़लत, इसका ब्यौरा भी वर्ग पूरा होते ही उनके पास पहुंच जाता था। भोजन के समय परोसते-परोसते वह गणित में ग़लती करनेवाले लड़के की कई बार मीठी चुटकी भी लिया करते थे। गुजराती में जो श्रुतलेखन होता था उसको जांचकर कापियों में नम्बर देने और हम जैसे अबोध बच्चों को रसभरी रीति से गीता का बोध देने का काम भी करते थे। मगनभाई मास्टर हम लोगों को संस्कृत श्लोकों का उच्चारण सिखाते और हमसे उन्हें याद करवाते थे। बापूजी, हमें उस समय प्रचलित श्री गटुलालजी कवि के लिखे हुए गीता के समश्लोकी पद्यानुवाद का अर्थ समझाते थे। उनके पढ़ाने से ऐसा मालूम

होता था, मानों साक्षात् ज्ञान और प्रकाश की मूर्ति हमारे सामने खड़ी है। गीता का अर्थ हम लोग एकाग्र मन से सुनें, इस पर बापू का बड़ा ज़ोर था।

हर शनिवार को हमारी परीक्षा ली जाती थी। एक सप्ताह में गणित की, दूसरे में गुजराती की, तीसरे में गीता की और चौथे में अंग्रेजी की। इस प्रकार हर महीने प्रत्येक विषय की परीक्षा हो जाती थी। परीक्षा के उत्तर-पत्र बापूजी ही जांचते थे और उसी दिन संध्या-प्रार्थना में उसका परिणाम सुना देते थे। साथ-साथ भूलें भी बताते और समझाते जाते थे। हम लोग शनिवार की प्रतीक्षा उत्सुकता से करते थे। बापूजी या मगनभाई हमारे हाथ में प्रश्न-पत्र देकर चले जाते थे। कोई हमारी चौकसी-पहरा करता हो, ऐसा मुझे याद नहीं। हम लोगों में से किसी के मन में यह इच्छा ही पैदा नहीं होती थी, कि स्वयं जितने दक्ष हैं उससे अधिक दक्षता बतायें। इसलिए लुक-छिपकर दूसरे की नक़ल करने की बात ही नहीं उठती थी। प्रत्येक विद्यार्थी अपनी बुद्धि के अनुसार धैर्य रखकर जो कुछ बन पड़ता था, स्पष्टता से लिखता था। यदि समझ में नहीं आता था, तो उसके दिल में क्षोभ या घबराहट पैदा नहीं होती थी। प्रत्येक के मन में तसल्ली रहती थी कि जो कमी होगी, बापूजी सिखा देंगे। असफल होते थे तो दूसरे महीने अधिक कोशिश करके ज्यादा परिणाम लाने का संकल्प करते थे और परीक्षा का दिन जल्दी आ जाए ऐसा मनाते थे।

परीक्षा में नम्बर देने का बापूजी का तरीका मुझे कई बार अन्याय-पूर्ण प्रतीत होता था। एक ही प्रश्न का उत्तर एक ही वर्ग के विद्यार्थी दें, तो दो विद्यार्थियों में जो अधिक अच्छा उत्तर देता था, उसको बापूजी कम नम्बर देते थे और जिसका उत्तर कम अच्छा होता था उसको अधिक नम्बर

देते थे। मुझे लगता था कि सुलेख के अक्षरों पर नम्बर देने में बापूजी अवश्य पक्षपात करते हैं। जब हम पूछते थे कि इतने अच्छे अक्षरों के भी आपने कम नम्बर क्यों दिये, तब बापूजी बताते थे कि किसी लड़के के मुकाबले कोई ज़्यादा होशियार है ऐसा हिसाब मुझे नहीं लगाना है। मुझे तो यह देखना है कि प्रत्येक लड़का जहां पर था वहां से कितना आगे बढ़ा है। उसने अपना काम कितना सुधारा है। होशियार लड़का मंदबुद्धिवाले लड़के के साथ ही अपने काम की तुलना करता रहेगा तो उसमें अभिमान आ जाएगा और उसकी बुद्धि और मंद हो जाएगी। वह पढ़ने में परिश्रम कम करेगा और कायदा यह है जो आगे नहीं बढ़ता वह पीछे हटता ही है। जो लड़का अधिक परिश्रम करके पूरी सावधानी से अपना काम करेगा उसी को मैं अधिक नम्बर दूंगा।

इन साप्ताहिक परीक्षाओं के द्वारा बापूजी ने हम लोगों को तेज़ी से आगे बढ़ाया। जो कुछ हम सीखते थे वह पक्का हो जाता था। यदि हम फिर भी कच्चे रहते तो हमारी बुद्धि को तेज़ करने के लिए बापूजी विशेष कोशिश करते थे।

हमारी यह पाठशाला मुश्किल से एक वर्ष तक चली होगी, लेकिन इतने समय में मेरी प्रगति इतनी अधिक हुई कि जो पिछले तीन वर्षों में भी नहीं हो पायी थी। गणित में जहां जोड़-गुणा करना भी मेरे लिए कठिन था वहां अब दशमलव, भिन्न और त्रिराशी के सवाल करने लगा। गीता में प्रथम अध्याय के 15-20 श्लोक याद थे, वह चौथे अध्याय तक याद हो गये। गुजराती लेखन आदि में दूसरी कक्षा तक पहुंच गया। मुझे विश्वास है कि अपनी आयु के दसवें वर्ष में बापूजी की उस पाठशाला में मैंने जो पाया वही और भी दस वर्ष तक उन्हीं के प्रत्यक्ष मार्ग-दर्शन में पा सकता, तो

विद्वानों के गढ़ में बापूजी ने मुझे प्रवेश करा दिया होता। किन्तु बापूजी के विद्यालय का आदर्श विद्वान् पैदा करना नहीं था, सत्याग्रही पैदा करना था। वह सत्य, शांत और ओजस्वी विद्या-सत्र खंडित होने के बाद दुबारा चलाने का अवसर बापूजी को नहीं मिला। उस पाठशाला का स्मरण ही मुझ जैसे विद्यार्थी के लिए पूरे जीवन का विद्यालय बन गया।

हमारी पाठशाला में पढ़ाई का काम सबेरे नौ से ग्यारह बजे तक चलता था। उसके बाद ग्यारह से साढ़े ग्यारह बजे तक हम लोगों को फावड़ा लेकर खेत में काम के लिए जाना पड़ता था। पाठशाला की शीतल छाया से निकलकर चिलचिलाती दुपहरी में कंधे पर फावड़ा रखकर खोदने जाने के लिए हमारा जी नहीं करता था।

वह आधा घंटा इधर-उधर चक्कर काटकर बिता देने की नीयत रहती थी, परन्तु बापूजी हमारी एक नहीं सुनते थे। इस समय में हम लोग अपना-अपना कुदाल-फावड़ा परखने और उठाने में दो मिनट भी नष्ट करें, यह उनको गवारा नहीं होता था। काम की निश्चित मात्रा, बापूजी बता दिया करते थे कि और कह देते थे कि उतना काम करने के बाद ही छुट्टी मिलेगी। उस आधे घंटे में प्रायः एक घंटे का काम हो जाता था। तेज़ी से आधे घंटे तक लगातार कसी चलाने से सब लोग पसीने में तर हो जाते थे और जब बापूजी से छुट्टी मिलती तो एक विजय भावना के साथ स्नान के लिए चल पड़ते थे।

एक बार हमारी पढ़ाई हो जाने पर ग्यारह बजने में दस मिनट बाकी रह गये थे। बापूजी प्रसन्नचित्त थे और हम लोगों से विनोदवार्ता कर रहे थे। इस मौके का लाभ लेकर एक बड़े विद्यार्थी ने साहस के साथ बापूजी से कहा, “बापूजी, हम लोगों को

यह आधे घंटेवाली खेती अच्छी नहीं लगती, खेत पर जाने-आने में ही कुछ समय कट जाता है। आप सवेरे ही हम लोगों से आधा घंटा अधिक श्रम करवा लिया करें।”

बापूजी ने जवाब दिया, ‘इस आधे घंटे को बदलने के लिए मैं ज़रा भी तैयार नहीं हूँ। भरी दुपहर में, कड़ी धूप में, फावड़ा चलाने की आदत तुम्हें डालनी ही चाहिए। आज यहां पर पढ़ रहे हो, कल यदि लड़ाई छिड़ गई और जेल जाना पड़ा तो वहां शीतल छाया में बैठने को थोड़े ही मिलेगा? वहां पर तो बहादुर मज़दूर की तरह अपनी कमर तोड़कर दिनभर ऐसी कड़ाके की धूप में ही तुम लोगों को फावड़ा चलाना पड़ेगा। अगर वहां तुम हार जाओ, थक जाओ, रोनी सूरतवाले बन जाओ, तो मेरी और तुम्हारी दोनों की नाक कट जाएगी। इससे बेहतर है कि तुम इस पाठशाला को ही छोड़कर घर लौट जाओ। ऐसा करने में मेरी और तुम्हारी शोभा अधिक रहेगी। फिर इस तरह निपट स्वार्थी बनना भी हम लोगों को शोभा नहीं देता। तुम सब यहां मजे से बैठे पढ़ रहे हो और बड़े लोग प्रातःकाल से लगातार अपनी हड्डियों को गलाकर परिश्रम कर रहे हैं, उन लोगों को क्यों भुला देते हो? हमें उनका साथ देना चाहिए। काम की पूर्णाहुति के समय हमारी सारी पाठशाला यदि उनकी मदद में पहुंच जाय तो उनको बहुत संतोष होगा। उनकी थकान भी दूर हो जाएगी।”

साढ़े ग्यारह बजे थके-थकाए हम लोग अपने फावड़े और औजारों को कोठार में फेंककर नहाने के लिए चले जाते थे। छापाखाने में कुएं पर एक भारी पंप था। उसे दो आदमी मुश्किल से खींच पाते थे। उससे तीन इंच मोटा प्रवाह निकलता था। बारी-बारी से दो-दो आदमी पंप चलाते थे और दूसरे सब स्नान करते थे। सबेरे से खेती के

काम के कारण जमा हुआ मैल पसीना और मिट्टी आदि पानी से धोकर और हाथ से मलकर चंद मिनट में साफ़ कर दिया जाता था। साबुन का उपयोग स्नान के लिए नहीं होता था। कपड़े बदलने की झंझट कम रहती थी। एक ही कपड़े अधिक दिन बरतते थे। उन्हें धोने का अवसर रविवार को ही मिलता था। बाकी दिनों में चटपट स्नान से निपटकर भोजन के लिए ठीक समय पर पहुंच जाना पड़ता था।

भोजन के बाद ठीक एक बजे दुपहर का कार्यक्रम शुरू हो जाता था। एक बजे से पांच बजे तक सब बड़े व्यक्ति छापाखाने में साप्ताहिक के लिए लिखने, कम्पोज करने आदि का अपना-अपना काम करते थे। और हम लोग तीन बजे तक पाठशाला में बैठकर स्वाध्याय करते थे। इस समय हम लोगों की गपशप भी बहुत चलती थी। यदि कोई अतिथि शिक्षक आ जाते थे, तो उससे गुजराती के प्राचीन कवियों के लिखे हुए रसपूर्ण और बोधपूर्ण व्याख्यान सुनते थे। लेकिन वास्तव में हमारे लिए यह समय बिना शिक्षक की पाठशाला का था।

बापूजी का “इंडियन ओपीनियन” साप्ताहिक के मुख्य लेख लिखने का समय भी यही होता था। भोजन के बाद वह सीधे छापाखाने के कार्यालय में पहुंच जाते थे और एकाग्रचित से सम्पादकीय और पत्र व्यवहार का काम पूरा करते थे। इतने थोड़े समय से भी आधा घंटा बचाकर बड़े विद्यार्थियों को अंग्रेज़ी सिखाने के लिए वह ढाई से तीन बजे तक पाठशाला में आया करते थे।

एक दिन की बात है। पाठशाला में बैठे हम लोग गप्पें लड़ाने में मशगूल थे। देवदास काका, डाह्याभाई मोती, रामदास काका, मैं और दूसरे भी आपस में अपने गणित के वर्ग की नुक़ताचीनी कर रहे थे। एक लड़का बोला भाई, गणित बापूजी ही पढ़ावें तो

अच्छा, छगनभाई अच्छी तरह समझा नहीं पाते। कठिन-से-कठिन सवाल को भी बापूजी बहुत अच्छी तरह समझाते हैं। दरवाजे के बाहर खड़े-खड़े बापूजी हमारी बात सुन रहे थे। चौखट की आड़ में दो-एक मिनट तक वे खड़े रहे और फिर धीरे से हमारे सामने आ गये। बापूजी ने उस रोज़ पढ़ाना छोड़कर हमें जो बातें सुनाईं वे अब तक स्पष्टतः याद हैं :

उन्होंने कहा, “तुम लोगों की यह कैसी उद्दंडता है? मेरे मुकाबले आज तुम्हें छगनलाल भाई अयोग्य लगते हैं, तो कल गोखले महाराज की तुलना में मैं अयोग्य लगूंगा। तुम्हें अपनी पढ़ाई से मतलब है कि अपने शिक्षक की योग्यता के नम्बर देने से? जो विद्यार्थी अपने शिक्षक की निन्दा करता है, वह चाहे कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो, उसकी सारी पढ़ाई शून्य रह जाएगी। शिक्षक चाहे कितना भी दे, जिस विद्यार्थी में विनम्रता नहीं है, वह कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकता। उलटे यदि शिक्षक थोड़ा-सा भी दे तो नम्र विद्यार्थी उसे बहुत बनाकर ग्रहण कर लेगा और तेजस्वी बनेगा। तुम लोग शिक्षकों के दोष देखो, यह बिल्कुल असह्य है। दोष देखना ही हो तो तुम अपने दोषों को देखो। गणित के शिक्षक छगनलाल ही रहेंगे। मेरे पास जिस तरह चित्त लगाकर तुम सवाल करते हो, उसी तरह छगनलाल के पास भी पूरे ध्यान से करना चाहिए। मन में उनके प्रति आदर भी रखना चाहिए।”

बापूजी की इस टीका का यह असर हुआ कि इसके बाद हम लोगों की चर्चा में फिर कभी भी शिक्षकों की टीका टिप्पणी नहीं हुई।

ठीक तीन बजे हम पाठशाला से छापाखाने में

पहुंचते थे। वहां पर हमें उद्योग शिक्षक मिलता था। तमिल, हिन्दी और गुजराती भाषी लड़के अपनी अपनी भाषा में और बड़े विद्यार्थी अंग्रेज़ी में कम्पोज करना सीखते थे। साप्ताहिक को प्रकाशित करने के दिन, बड़ों के साथ सब विद्यार्थियों को भी चटपट काम करने की चिंता लगी रहती थी। कागज़ों को इधर से उधर मोड़कर तह बनाना, अखबारों के बंडल तैयार करना आदि हम लोग भरसक तेज़ी से करते थे। अखबार के इस उद्योग में जो लड़का मंद साबित होता था, उसकी लगाम बापूजी अपने हाथ में लेते थे। आगे चलकर ऐसे भी सप्ताह आये, जब छापने और प्रकाशित करने का, सारा-का-सारा काम विद्यार्थियों ने हाथ में ले लिया।

ठीक पांच बजे हम लोग फिर खेतों पर पहुंच जाते थे। क्षितिज पर अस्त होनेवाले सूर्य की लालिमा से सुशोभित आकाश के नीचे, पक्षियों के गीतों की विविध तानें सुनते हुए हम लोगों को खेत के काम का वह घंटा बहुत सुखद मालूम होता था। इस समय कड़ा परिश्रम क्वचित् ही होता था। खोदने का भारी काम सबेरे हो जाता था और शाम को दिन छिपने तक हम लोग कोमल पौधों को पानी देने और उनकी क्यारियां बनाने में तथा बगीचे के फल-फूलों की अभिवृद्धि का निरीक्षण करने में लगे रहते थे। छापाखाने का बड़ा घंटा छह बजने की सूचना देता था। घंटा सुनते ही हम लोग घर पहुंच जाते थे और हाथ-मुंह धोकर शीघ्रता से भोजन करने के लिए पंक्ति में जा बैठते थे।

शाम की ब्यालू के बाद हम लोग तरह-तरह के खेल-खेलते थे और इतनी हंसी होती थी कि दिनभर की थकान दूर हो जाती थी।

सामार— 'नई तालीम' मार्च 1956 अंक 9 सेवाग्राम से।

दादा की कुछ यादें

★ ज्ञान प्रकाश सोनी

मेरे पिता श्री दयाल चंद्र सोनी को हम सब भाई बहन और मिलनेवाले 'दादा' के नाम से पुकारते रहे हैं, जो अपनी यादें छोड़कर 2008 को ईश्वर को प्यारे हुए। दादा का जन्म 28 जुलाई 1919 को उदयपुर के पास के सलूमबर कस्बे में हुआ था, जो मेवाड़ रियासत का प्रमुख ठिकाना था। सलूमबर कस्बा उदयपुर से लगभग 70 किलोमीटर दूर है और उस समय वहां कक्षा छह तक की पढ़ाई की व्यवस्था थी। इसमें दादा प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण हुए। उस समय परिवार की आर्थिक स्थिति तो कठिन थी ही, लेकिन संचार और आवागमन के साधन भी पूरी तरह से अविकसित थे। सलूमबर से उदयपुर की यात्रा तो आज की अमरीका यात्रा से भी कठिन थी। दादा बताया करते थे उस समय सप्ताह में एक बार तत्कालीन महाराणा द्वारा संचालित एक बस चलती थी जिससे यात्रा के लिए भारी टिकट तो लगता ही था, रास्ते में चोर डकैतों से सुरक्षा के लिए बारी बारी से जो प्रहरी चलते, उसका खर्च भी यात्रियों को आपस में बांटना पड़ता था। इसके अलावा तो साइकिल से या फिर पैदल ही जाना होता था। साइकिल पर जाने पर रास्ते में पहिया पंक्चर हो जाए, तो इसे ठीक करनेवाले सार्वजनिक रूप से उपलब्ध नहीं थे। इसलिए सभी साधन मय पंप साइकिल पर ही साथ रखने होते थे। पैदल जाने पर कम से कम एक रात्रि विश्राम रास्ते में करना होता था। ज्यादा

सवारी होने पर तांगे किराये पर मिलते थे, लेकिन उनको मुख्य सड़क पर चलाने के लिए महाराणा साहब के कार्यालय से विशेष मंजूरी लेनी पड़ती थी, क्योंकि मुख्य सड़क उनकी निजी मानी जाती थी। टेलीफोन तो दूर, डाक व्यवस्था भी हरकारों के भरोसे थी जो रिले रेस की भांति पैदल अपने-अपने हिस्से की दूरी तय कर डाक को गंतव्य तक पहुंचाते थे और डाक-व्यय पानेवाले को देना होता था। ऐसी कठिन स्थितियों में मात्र 13 वर्ष की आयु में दादा ने उदयपुर आकर आगे की पढ़ाई का मानस बनाया। यह उनकी दूरदर्शिता, हिम्मत और कुछ कर गुजरने की तमन्ना दर्शाता है। सलूमबर के तत्कालीन शासक श्री खुमाण सिंह जी द्वारा स्वीकृत पांच रुपये मासिक की छात्रवृत्ति और उदयपुर की प्रसिद्ध शिक्षण संस्था विद्या भवन के संस्थापक तत्कालीन श्री अध्यक्ष मोहनसिंह जी मेहता की प्रेरणा व बोर्डिंग फीस माफ़ करने की स्वीकृति उनकी इस इच्छा की पूर्ति में सहायक रही।

विद्या भवन स्कूल में योग्य अध्यापकों के शिक्षण से उनकी प्रतिभा चमकी और सन् 1936 में उन्होंने हाइ स्कूल की परीक्षा स्कूल में प्रथम स्थान के साथ प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। विद्या भवन स्कूल के प्रारंभ के बाद से प्रथम श्रेणी के अंक लानेवाले ये पहले छात्र थे। इस उल्लेखनीय उपलब्धि को देखते हुए विद्या भवन प्रबंधन ने उन्हें तत्काल

★ राजस्थान में अधीक्षण अभियन्ता के पद से सेवानिवृत्त।

हिंदी अध्यापक नियुक्त कर दिया। तब उनकी उम्र 17 वर्ष ही थी। अध्यापन कार्य करते हुए उन्होंने स्वयंपाठी छात्र के रूप में 1939 में इंटरमीडिएट व 1950 में बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। विद्या भवन ने 1941 में जब रामगिरि गांव में बुनियादी मदरसा खोला तो इस नवीन चुनौतीपूर्ण कार्य के लिए दादा को चुना गया और उन्हें इस स्कूल का प्रधानाध्यापक नियुक्त किया गया। इस मदरसे में बुनियादी तालीम का मूर्तरूप देने और उसके सफल क्रियान्वयन के लिए उन्हें विभिन्न जगह जैसे सेवाग्राम में आशादेवी आर्यनायकम् तथा महात्मा गांधी से, जामिया मिल्लिया इस्लामिया में डॉ. ज़ाकिर हुसैन तथा पवनार में विनोबा भावे का सान्निध्य व मार्गदर्शन मिला। उस समय यहां पढ़ाई के साथ कृषि कार्य भी होता था और तकली व चर्खे से सूत कताई आदि भी। स्कूल परिसर की साफ-सफाई, वृक्षारोपण आदि में भी छात्र पूरी मदद करते थे या यूँ कहें कि छात्र और अध्यापक मिलकर यह कार्य करते थे। स्कूल की कच्ची सड़क पर जो झाड़ू लगता वो समूह में उल्टे पैर चलकर लगाया जाता था ताकि झाड़ू की सलियों से बननेवाली लाइनें, तो एक सरीखी नज़र आवें लेकिन झाड़ू लगते ही उन पर पांव या जूते के निशान नहीं बनें। इस प्रकार की व्यवस्थाओं से हम छात्रों ने अपने बाल्यकाल में ही पर्यावरण का महत्त्व सीखा और किसी भी काम को नीचा नहीं मानने की आदत पड़ी व साथ ही छोटे से छोटे काम को भी पूरी उत्कृष्टता के साथ करने की तमन्ना पनपी। ये सब गुण आगे जाकर जीवन का अभिन्न अंग बन गए।

मैं भी बुनियादी मदरसे में पढ़ता था। इसी समय की एक घटना है, जिसमें मेरी कक्षा के एक लड़के की चवन्नी स्कूल से चोरी हो गई। यह जानकारी

जब मेरे प्रधानाध्यापक पिता को मिली, तो उन्होंने इसे अपनी शिक्षा देने की योग्यता में कमी माना और अगले दिन की प्रार्थना सभा में यह कहा कि इस कमी के प्रायश्चित के तौर पर, वे एक दिन का उपवास रखेंगे और एक चवन्नी प्रार्थना कक्ष की खिड़की के तल पर बिना किसी निगरानी के, तब तक रखते रहेंगे कि जब तक वह चोरी होगी। परिणामस्वरूप चवन्नी खुले कमरे में पड़ी रहती, लेकिन कोई उसे चुराता नहीं था। एक बार, स्कूल का बागवान मेरी मां को स्कूल के खेत का कुछ हरा धनिया दे गया, जिसकी चटनी बनाकर मेरी मां ने खाने के साथ परोस दी। उन दिनों स्कूल की स्थिति बस्ती से काफी दूर थी और सब्जी वगैरह दादा ही लाया करते थे। स्कूल के उत्पादन अलग से इकट्ठे बिकते थे। जब खाने में उन्होंने धनिये की चटनी देखी तो पूछा कि धनिया तो वे लाए नहीं थे, तो चटनी कहाँ से बनी और जब मां ने बागवान द्वारा हरा धनिया देने की बात बताई, तो घर में कोहराम मच गया कि स्कूल का उत्पादन क्यों काम में लिया गया? खैर, दूसरे ही दिन उन्होंने धनिये की कीमत पेटे एक आने की रसीद बनवाई और भविष्य में इस प्रकार की कोई सामग्री न लेने की कड़ी हिदायत दी। ऐसी घटनाओं से हमें बचपन से ही पराई वस्तुओं को पराया मानने और अधीनस्थों की त्रुटियों की जिम्मेदारी अपनी खुद की मानने की आदत पड़ी।

सन् 1954 में दादा को भारत सरकार के श्री नानाभाई भट्ट के नेतृत्व में गठित 18 सदस्यीय शिष्टमण्डल के सदस्य के रूप में डेनमार्क की फॉक हाइ स्कूल प्रणाली की भारत में उपयोगिता के अध्ययन हेतु तीन माह के लिए डेनमार्क भेजा गया। दादा बताया करते थे कि उस समय इस विदेश यात्रा के लिए सूटकेस आदि विद्या भवन ने

उपलब्ध कराये थे। विदेश यात्रा से वापस आने पर ऐसा सारा सामान जो उन्हें इस यात्रा के लिए निःशुल्क उपलब्ध कराया गया था, वह सब उन्होंने वापस लौटा दिया, जब कि ऐसी कोई मांग विद्या भवन की नहीं थी। इस विदेश यात्रा के दौरान उन्होंने डेनिश भाषा का प्रारंभिक ज्ञान वहां के लोगों से लिया और लौटते समय विदाई का भाषण डेनिश भाषा में ही देकर, वहां के लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया। स्थानीय भाषाओं का सम्मान करने की उनकी यह प्रवृत्ति लगातार जारी रही और प्रौढ़ शिक्षा के लिए स्थानीय भाषाओं का प्रयोग करने की बुनियाद बनी।

सन् 1956 में विद्या भवन प्रबंधन और दादा के बीच वैचारिक मतभेद इतने गंभीर हो गए कि एक दिन अचानक दोपहर में अनुशासनहीनता के आरोप में प्रबंधन ने उन्हें तत्काल प्रभाव से विद्या भवन की सेवाओं से मुक्त कर दिया। सुबह तो वे स्कूल गये थे लेकिन दोपहर के अवकाश के बाद नहीं जा सके। मेरी उम्र उस समय मात्र नौ साल की थी लेकिन इस गंभीर घटना की कुछ-कुछ यादें अभी भी हैं। मतभेद का मुख्य मुद्दा यह था कि स्कूल का मुख्य भवन जो स्थानीय निवासियों, छात्रों और अध्यापकों के श्रमदान से बना था उसे प्रबंधन तोड़कर नया बनाना चाहता था, क्योंकि भरपूर आर्थिक अनुदान सरकार से मिलने लगा था। जबकि दादा का यह मत था कि यह भवन स्कूल के कठिनाई भरे समय की यादगार है और इसे संरक्षित रखते हुए पास ही अन्य स्थान पर नया भवन बनाया जाना चाहिए। इस समय विद्या भवन सोसायटी में आजीवन सदस्य बनाने का एक प्रावधान संस्था के संविधान में था, जिसमें यह शपथपत्र दिया जाता था कि विद्या भवन जो पद और जो वेतन देगा, उस पर ऐसा सदस्य कम से

कम चौदह वर्ष तक कार्य करेगा। इसका उद्देश्य संस्था के लिए समर्पित व्यक्तियों को जुटाने का था। ऐसे संभवतः कुल 12 सदस्य थे, उनमें से दादा भी एक थे। जब विद्या भवन प्रबंधन ने उनकी सेवाएं अचानक समाप्त कर दीं, तो उनका मत था कि अपनी शपथ में बंधे होने से वे अब भी विद्या भवन के शून्य पद और शून्य वेतन पर कार्य कर अपना वचन निभाएंगे। इस शपथ पत्र की चौदह वर्ष की अवधि समाप्त होने तक कहीं और नौकरी नहीं करेंगे। हम सब बच्चे छोटे थे। दादा के इस निर्णय से परिवार पर भारी आर्थिक कष्ट आना निश्चित था। लेकिन मुझे अच्छी तरह से याद है कि मेरी मां ने इस कठिन वचन पालन में उनकी हिम्मत बढ़ाई और यह कहा कि वे अपनी आत्मा की आवाज़ के अनुसार निर्णय लें और वो स्वयं भी कुछ न कुछ काम करेंगी, ताकि परिवार का भरण पोषण हो सके। गांव के स्थानीय लोगों ने उन्हें निःशुल्क ज़मीन देकर नया स्कूल खोलने का प्रस्ताव रखा, तो दादा ने उसे अस्वीकार कर दिया। क्योंकि उनकी राय में इससे उनके पसीने से विकसित इस मूल स्कूल का अहित होता, जो उन्हें बर्दाश्त नहीं था। इसलिए दादा लेखन, ट्यूशन आदि करते और मां गो-पालन, सिलाई आदि करती, जिससे घर का काम चल जाता था। हम बच्चे भी इसमें मदद करते थे। मां और हम लोग पतंगें बनाने, जिल्द बांधने व पुट्टे के फ़ाइल कवर बनाने जैसे काम करते थे। बाल्यकाल में ही काम के प्रति निष्ठा, स्वाभिमान और कठिनाइयां सहने की आदत ने, हम सब बच्चों को कर्मठ बनाया और बाधाओं से विचलित नहीं होने की हिम्मत दी। सादा जीवन और मितव्ययिता की आदत अपने आप ही पड़ गई।

विद्या भवन की नौकरी न रहने के समय 1960 में

उन्हें कक्षा 6 व 7 के लिए सामाजिक ज्ञान विषय की किताबें लिखने का कार्य राजस्थान राज्य पाठ्य पुस्तक मंडल से मिला। इन किताबों में किए जानेवाले ऐतिहासिक उल्लेखों की प्रामाणिकता के लिए कई संदर्भ ग्रंथ उन्होंने टटोले। इसी प्रकार कई अन्य लेखों व पुस्तकों को लिखते समय भी यही स्थिति रहती थी। घर में ढेरों किताबें व बार बार हाथ से लिखे कई कई पृष्ठों को कटते-फटते हम बच्चे देखते थे और इससे हमारे अंदर भी यह आदत पनपी कि जो लिखा या कहा जाय वह प्रामाणिक, परखा हुआ और उत्कृष्ट हो। पिताजी हिन्दी, अंग्रेजी, व उर्दू भाषा के माहिर थे और कभी भी कुछ भी लिखकर ले जाओ, तो उसमें वे कुछ न कुछ गलतियां निकाल ही देते थे। साथ ही उन गलतियों का आधार भी बताते थे। अंग्रेजी के लिए तो वे अक्सर यह कहते थे कि यह अपने बाप की भाषा नहीं है, इसलिए हर शब्द के स्पेलिंग पर शक करो और डिकशनरी देखते रहो। मेवाड़ी भाषा से उन्हें विशेष लगाव था। इसे जाननेवाले लोगों से वे मेवाड़ी में ही बात करना पसंद करते थे। इनकी मेवाड़ी भाषा में रचित 'महूँ अणभण्यो शिक्षित हूँ' पुस्तक देश-विदेश में बहुत प्रसिद्ध हुई है और कई भाषाओं में इसका अनुवाद भी हुआ है।

राज्य पाठ्य पुस्तक मण्डल के लिए उक्त दो किताबें लिखने से उनको एक साथ पांच हजार रुपयों की आय हुई, जो उस समय मायने रखती थी। इस आय से उन्होंने सन् 1962 में एक आटा चक्की खरीदी और एक कच्चा मकान भी बनाया। यह समय देश पर चीनी आक्रमण का था, तब देश में महंगाई तेजी से बढ़ रही थी और उनका यह मानना था कि चाहे जितनी महंगाई बढ़े आदमी आटा पिसाने का काम तो बंद नहीं कर सकता है। यह आटा चक्की चलाने का काम भी उनकी एक

प्रयोगशाला बना। उस समय सब चक्कीवाले जितना अनाज लाओ उतने ही वजन का आटा वापस देने का वादा करते थे, तो दादा ने भी यही किया। लेकिन जहां दूसरे चक्कीवाले तो दिनभर में काफ़ी आटा बचा लेते, वहां इनकी चक्की पर आटा घट जाता और इन्हें बाज़ार से गेहूं खरीद कर उसके आटे से इस कमी की पूर्ति करनी पड़ती। इस बारे में गहरे जाने पर दादा को मालूम हुआ कि सामान्यतः बिल्कुल सूखा अनाज नहीं आता है और पिसाई के दौरान अनाज की अंदरूनी नमी वाष्प बनकर उड़ती है। इससे आटा तो अनाज के वजन से कम ही निकलता है। चक्कीवाले तौलने के कांटे में कड़ी को चतुराई से तिरछी कर देते थे, जिससे अनाज लेते समय तो वजन वास्तविक से कम और देते समय वास्तविक से अधिक नज़र आता है। इस हेराफेरी से पिसाई के दौरान ही वास्तविक कमी की पूर्ति होती ही है, आटे की बचत और हो जाती है। इस अप्रत्यक्ष आय के कारण पिसाई की दरें भी प्रतिस्पर्धा में आगे रहने के लिए चक्कीवाले कम रख देते हैं। यह काम दादा कर नहीं सकते थे। उन्होंने पर्चे छपाकर वस्तुस्थिति का परिचय देते हुए यह नियम बनाया कि वजन की कोई हेराफेरी नहीं होगी और जिसके अनाज के वजन से पिसाई के दौरान जितनी कमी होगी वह ग्राहक को भुगतनी होगी। प्रारंभ में बहुत कठिनाई रही। हमारी चक्की चलानेवाले नौकर ने समझाया भी कि जैसा सब करते हैं, वैसा अपन भी करें। लेकिन दादा नहीं माने और घाटा उठाकर भी चक्की चलाते रहे। लेकिन कुछ ही महीनों में उनके द्वारा किया जानेवाला वस्तुस्थिति का खुलासा, लोगों को समझ में आने लगा और उनकी चक्की की ईमानदारी की ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी, जिससे ग्राहकी बढ़ गई और चक्की अच्छे लाभ में आ

गई। जहां प्रतिस्पर्धी यह समझते थे कि माइसाब क्या चक्की चला पाएंगे, लेकिन हुआ उल्टा और प्रतिस्पर्धियों को ग्राहकों के लाले पड़ गए। आज भी यह चक्की इसी ख्याति के साथ, उन्हीं परम्पराओं पर चल रही है। पिसाई की दर दूसरों से ज्यादा है और आटा जितना घटता है वह ग्राहक ही सहन करते हैं। उस समय का कच्चा मकान अपरिग्रह सिखाता है और उनकी चलाई चक्की लगातार ईमानदारी की प्रेरणा देती रहती है।

भूदान आंदोलन के दौरान विनोबाजी ने 1959 में दस दिनों के लिए उदयपुर जिले की पद यात्रा की थी। इस यात्रा में सुबह चार बजे लालटेन लेकर विनोबाजी से तीस कदम आगे मार्ग प्रदर्शक के रूप में चलने का कार्य मेरे पिताजी को सौंपा गया। विनोबाजी के सान्निध्य में उन्हें 'गीता' ग्रन्थ के अध्ययन-मनन करने की प्रेरणा मिली जो जीवन पर्यन्त रही। राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा सन् 2003 में प्रकाशित एक अनोखी पुस्तक 'गीता की जीवन विद्या' की रचना का कारण बनी। गीता से उन्होंने 'योग: कर्मसु कौशलम्' सूत्र अपनाया यानी कि जीवन में कर्मों को करने की जो निपुणता, कारीगरी, कला, दक्षता और कौशल है वही योग है। साथ ही पूरे मनोयोग से कर्म करने के बाद स्वयं के बारे में कोई चिंता नहीं करने के लिए उन्होंने गीता के नवें अध्याय के बारहवें श्लोक— "अनन्याश्रिचन्तयन्तो मां यं जनाः पर्युपासते। तेषां नित्यभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।" यानी जो लोग अनन्य भाव से मेरी उपासना करनेवाले हैं, उन नित्य योगी लोगों के योगक्षेम का दायित्व, मैं उठाता हूँ। गीता को सरल मेवाड़ी भाषा में प्रस्तुत करने की उनकी इच्छा थी, जो तीन अध्यायों तक ही सीमित रह गई। लेकिन इसका एक संक्षिप्त सार 'विनती गीता' के नाम से उन्होंने सृजित किया,

जिसका पिछले तीस वर्षों से, वे आये दिन संपादन कर परिष्करण करते ही रहे। घर पर जो भी मिलने आता उसे इस हस्तलिखित 'विनती गीता' की फोटो प्रति वे अक्सर दिया करते थे।

वर्षों बाद सन् 1969 में जब विद्या भवन के संस्थापक अध्यक्ष श्री मोहन सिंह मेहता अपनी कई वर्षों की दूरस्थ जिम्मेदारियों (भारतीय राजदूत—'ब्रिटेन व पाकिस्तान तथा उपकुलपति राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) से मुक्त होकर वापस उदयपुर आए, तो उन्हें पिताजी के साथ हुए व्यवहार के लिए दुःख हुआ और उन्होंने वापस विद्या भवन रूरल इन्स्टीट्यूट में नियुक्ति दी और कुछ समय बाद उनके द्वारा नवसृजित 'सेवा मंदिर' में प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार का कार्य सौंपा। यह कार्य उन्होंने बखूबी निभाया और धीरे-धीरे जिले के दूरस्थ क्षेत्रों में लगभग सौ प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र नियमित रूप से चलने लगे। इस कार्य में भी उन्होंने कई मौलिक प्रयोग किए, जिसमें पहला तो यह था निःशुल्क शिक्षा देने के प्रयास के परिणाम उल्टे हो जाते हैं और इसे संस्था की गरज मान लिया जाता है। इसलिए ग्रामीणों की लिखित मांग और कुछ न कुछ शुल्क लेकर प्रौढ़ शिक्षा के केन्द्र प्रारंभ करने की नीति उन्होंने बनाई। दूसरा यह कि स्थानीय भाषा का उपयोग कर साक्षर बनाना अधिक आसान है। इस सिद्धान्त की सफलता को धीरे-धीरे सारे देश में मान्यता मिली और वर्षों बाद इसके प्रतिपादन के लिए भारत सरकार द्वारा इन्हें वर्ष 2002 में 'टैगौर साक्षरता' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इससे पहले सन् 1992 में उनकी पुस्तक 'अनौपचारिक शिक्षा का सही स्वरूप' पर उत्तर प्रदेश हिंदी साहित्य संस्थान ने उन्हें 'मदन मोहन मालवीय पुरस्कार' से सम्मानित किया।

बुनियादी शिक्षा जीवन की शिक्षा है

★ विश्व विजया सिंह

प्रस्तुत लेख की लेखिका को स्कूली शिक्षा का काफी लम्बा व गहरा अनुभव रहा है, विशेषतौर से विद्या भवन में। आपने स्कूली बच्चों को बहुत नज़दीकी से देखा है और आपके अनुभव बहुत समृद्ध रहे हैं। इस लेख में आपने बुनियादी तालीम को जीवन की शिक्षा के रूप में उसके विभिन्न अर्थों और रूपों का उल्लेख करते हुए कुछ कामकाजी बच्चों का चित्रण किया है।

दीपावली से पूर्व एक रविवार को घर की घण्टी बजने पर मैं बाहर निकली, तो एक 13-14 वर्ष के बच्चे ने पूछा, 'क्या आपको गमलों पर गेरू से रंगारंग करवानी है?' मैंने कहा, "हां-हां" और पारिश्रमिक तय करके बच्चे ने काम शुरू कर दिया। बड़ी कुशलता से वह हाथ चला रहा था। उसे देखकर सहज अनुमान लगाया जा सकता था कि वह अनुभव सिद्ध है। उत्सुकतावश मैंने पूछा, "तुम्हारे पिताजी क्या करते हैं?" "खेतीबारी" उसका संक्षिप्त उत्तर था। 'फिर यह काम कहां सीखा?' 'अपने स्कूल में।' अब तो मेरी जिज्ञासा और बढ़ी। 'अच्छा क्या तुम्हें ये काम भी सिखाए जाते हैं? किस स्कूल में पढ़ते हो?' उसने बताया कि वह अपने गांव के पास ही रामगिरि ग्राम में बुनियादी मदरसे में कक्षा सात में पढ़ता है। यह काम सीखने से वह पढ़ाई के साथ-साथ खाली समय में काम करके परिवार को आर्थिक सहयोग भी कर पाता है।

बारिश के दिनों में गाजर घास सब तरफ फैल जाती है। मेरे घर के बाहर आसपास की खाली पड़ी ज़मीन भी उससे पूरी तरह ढंक जाती है। ऐसे समय दो बच्चों ने आकर पूछा, "क्या हम ये गाजर घास निकाल दें।" "ज़रूर, यह तो तुमने

बहुत अच्छा काम सोचा।" अपना मेहनताना तय कर वे काम में जुट गए। 'क्या तुम लोग पढ़ते हो? कहां पढ़ते हो?' प्रश्नों के उत्तर में बच्चों ने बताया घर के पास के किसी सरकारी स्कूल में वे पढ़ते हैं। परिवार की आर्थिक विपन्नता में कुछ मदद हो सके, इसलिए वे छुट्टी के दिन ये काम करके कुछ धन अर्जित कर लेते हैं।

उपर्युक्त दो चित्रों के विपरीत कुछ चित्र ये भी हैं— शनिवार को कुछ बच्चे पात्र में शनि देव की मूर्ति या फोटो रखकर बाज़ार में या चौराहों पर आमतौर पर दिख जाते हैं। पता नहीं ये किसी स्कूल में पढ़ते हैं या नहीं। किन्तु उनको इस तरह भिक्षावृत्ति की ओर किसने उन्मुख किया? इनके मांगने पर रुपया, दो रुपया इनके पात्र में डालकर लोग कुछ पुण्य-सा कमाते भी, आमतौर पर दिख जाते हैं। सवाल यह है कि क्या हम इस तरह उनकी मदद कर रहे हैं या भिक्षावृत्ति को बढ़ावा दे रहे हैं?

बारह-तेरह वर्ष की एक लड़की बाज़ार में हाथ फैलाए इधर-उधर घूम रही थी। मेरे पास आकर बोली, "पैसे दो, बहुत भूख लगी है।" मैंने कहा, "मेरा घर पास में ही है, चलो बगीचे में थोड़ी सफ़ाई कर देना या बर्तन साफ़ कर देना तो पैसे मिलेंगे।" सुनते ही वह बिना कुछ बोले रवाना हो

★ वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी में कार्यरत।

गई। मेहनत करना उसे गवारा नहीं था, शायद भूख भी उतनी नहीं होगी, क्योंकि वह हमेशा ही यही कहकर मांगती दिखती है।

एक बार बस में सफ़र करते हुए एक गांव से बस में चढ़ी हुई महिला को देखा, एक छोटी बच्ची उसकी गोद में थी और दूसरी बच्ची, जो संभवतः छह-सात वर्ष की थी, की उंगली उसने पकड़ी हुई थी। दोनों बच्चियों के बाल बिल्कुल रूखे, अत्यधिक उलझे हुए, संभवतः तेल और कंधी का स्पर्श उन्हें दीर्घावधि से नहीं हुआ था। मैं सोचने लगी ये जटा बने बाल तो कभी सुलझेंगे भी कि नहीं? शायद इन्हें तो कटवाना ही पड़ेगा। क्या करे बेचारी मां? नहीं होगा घर में तेल या कंधा? पर बालों से हटकर निगाह नीचे गई तो देखा बड़ी बच्ची ने चांदी की पायजेब पहनी हुई थी। क्या वह ज़रूरी है? क्या बालों में तेल लगाना और कंधी करना ज़रूरी नहीं?

बाल श्रम उचित नहीं, कानून विरुद्ध है। पर यहां वहां बाल श्रमिक तो दिखते ही हैं। और कोई-कोई बीड़ी पीते या गुटका खाते भी नज़र आ जाते हैं। धनार्जन उनकी मजबूरी हो सकती है, किन्तु मेहनत से कमाए उस पैसे को यूं दुर्व्यसन में उड़ाना कितना ग़लत है, कौन समझाएगा उन्हें? 1941 में रामगिरि, उदयपुर में स्थापित विद्या भवन बुनियादी मंदरसे के प्रथम प्रधानाध्यापक दयाल चन्द्र सोनी ने अपने अनुभवों के आधार पर लिखित 'बुनियादी शिक्षा क्या और कैसे?' पुस्तक में लिखा है— "विद्यार्थियों को ऐसी बातों का ज्ञान दिया जाय और ऐसी बातों में उनकी शिक्षा की जाय, जो उनके जीवन के लिए बहुत आवश्यक हो या जो कि जीवन की बुनियादी बातें हों।

विद्यार्थी ठीक से शौच जाना, दातौन करना, स्नान करना, कपड़े धोना, कपड़े की मरम्मत करना, बटन सीना और लगाना, कमरों में झाड़ू लगाना,

पानी छानना, कपड़ा बनाना और भोजन पैदा करना और पकाना भी उसी तरह सीखें, जिस प्रकार वे जोड़-बाकी, गुणा-भाग और पढ़ना-लिखना सीखते हैं।"

"बुनियादी शिक्षा की दृष्टि यह है कि 'जीवन की मूल समस्याएं और जीवन की मूल आवश्यकताएं ही शिक्षा की मूल प्रेरणा, शिक्षा का मूल स्रोत और शिक्षा का वास्तविक विषय और क्षेत्र हैं और इसलिए शिक्षा का कार्यक्रम यह कहकर स्थगित नहीं किया जाना चाहिए कि देश की आर्थिक प्रगति नहीं हुई है। यदि देश की आर्थिक प्रगति नहीं हुई है, तो तालीम पर यह भार डाला जाना चाहिए कि वह देश की आर्थिक प्रगति करे। यदि देश में स्वास्थ्य की समस्या है, तो शिक्षा पर यह भार डाला जाना चाहिए कि वह देश के स्वास्थ्य-सुधार में सबसे अधिक काम करे। यदि देश में सांप्रदायिक मनमुटाव और झगड़ों की समस्या है, तो तालीम पर यह भार डालिये कि वह सांप्रदायिक एकता पैदा करे। यदि राष्ट्र में खेती का सुधार करना आवश्यक है, तो यह काम शिक्षा को सौंपिये। यदि देश में जंगल लगाये जाने हैं, तो शिक्षा इस काम के प्रति उदास नहीं रह सकती। यदि देश में खाद की कमी है और हमारे यहां गंदगी और घिनौनेपन का बोलबाला है, तो तालीम का यह काम है कि देशवासियों को ठीक से शौच जाना और मल-मूत्र की खाद बनाना सिखाये। तालीम को किताबों, परीक्षाओं और डिग्रियों में कैद कर देना तालीम का गला घोटना है। तालीम को राष्ट्रीय जनजीवन की ज्वलंत समस्याओं की आंच लगने से बचाकर दूर-दूर रखना तालीम को निष्प्रभ और निर्जीव बनाना है। शिक्षा पूर्ण जीवन की समग्रता से ओतप्रोत है। बुनियादी शिक्षा इसीलिए बुनियादी है कि वह जीवन की बुनियादी बातों को तालीम का मुख्य अंग मानती

है और बुनियादी शिक्षा इसीलिए राष्ट्रीय शिक्षा है कि वह हमारे राष्ट्र की मूल और ज्वलंत समस्याओं को सुलझाने की दृष्टि से अपना कार्यक्रम निर्धारित करती है।”

सन् 1944 में गांधीजी जब जेल से बाहर आये तो नयी तालीम के लिए एक नयी दृष्टि एवं विचार लेकर आये। उन्होंने कहा कि “अपनी कैंद” में मैं नयी तालीम के बारे में सोचता रहा हूं। हमने आज तक जो काम किया, उससे संतोष मानकर हमें चुप नहीं बैठ जाना चाहिए। हमें तो बच्चों के घरों के अंदर पहुंच जाना है उनके मां-बाप को भी तालीम देनी है। नयी तालीम तो जीवन की तालीम होनी चाहिए या दूसरे शब्दों में कहें तो नयी तालीम जीवन के लिए जीवन द्वारा शिक्षण है। यह तो जीवन के साथ ही चलती है। इसमें हर व्यक्ति का और पूरे जीवन का शिक्षण सम्मिलित होना चाहिए।” यह नयी तालीम का नया दर्शन था।

विनोबाजी के अनुसार ‘बुनियादी शिक्षा समग्र एवं नित-नयी तालीम है। बुनियादी शिक्षा जीवन की बुनियादी बातों की निरन्तर शिक्षा है। समग्र शिक्षा का अर्थ यही है कि बुनियादी शिक्षा जीवन के किसी एकांग को शिक्षा का क्षेत्र नहीं मानती, जैसा कि परंपरित शिक्षा में केवल बौद्धिक ज्ञान को पूरी शिक्षा मान लिया जाता था। जैसे-जैसे परिस्थितियां और विद्यार्थी की आवश्यकताएं बदलती जाएंगी, वैसे-वैसे शिक्षा भी बदलकर नित-नूतन होती जाएगी।

सच है केवल अक्षर ज्ञान या पुस्तकीय ज्ञान प्राप्ति पर्याप्त नहीं है। जीवन में सफलता के लिए या भली प्रकार से जीवन निर्वाह के लिए व्यावहारिक ज्ञान अपेक्षित है। श्रम अपेक्षित है, कौशल अपेक्षित है। दिन-प्रतिदिन के काम वह भली प्रकार कर

सके, सहयोग भावना से रह सके, यह भी जरूरी है। बुनियादी शिक्षा में विद्यार्थियों की इस तरह की तैयारी स्वतः हो जाती है।

‘नयी तालीम की प्रासंगिकता’ के बारे में प्रो. कृष्ण कुमार कहते हैं – “बुनियादी शिक्षा की तीन बातें हैं, एक तो हाथ का काम स्कूल में हो, दूसरी स्कूल की शिक्षा स्थानीय परिवेश से जुड़ी हो और तीसरी, स्कूल में जो-जो विषय पढ़ाए जाएं, जो-जो कौशल कराए जाएं, ज्ञान के जो-जो क्षेत्र बच्चों तक लाए जाएं, वह अलग-अलग न होकर संगठित हो।

बुनियादी शिक्षा का विचार मूलतः जीवन के काम से सम्बन्धित है। काम जो जीवन जीने में मदद करते हैं। वे तमाम काम किए बिना, नियमित रूप से दक्षतापूर्वक किए बिना जिन्दगी को जिया नहीं जा सकता है। ऐसे कामों में शुरु से ही बच्चों को शामिल रखने का विचार बुनियादी शिक्षा में होता है। अगर स्कूल में सफाई की जाए, शौचालय बनाए रखना है, एक पानी की टंकी है या स्कूल में पानी नहीं है तो पानी का इंतजाम करना, ये तमाम काम छोटे काम हैं, परन्तु जिनको लेकर आज की शिक्षा व्यवस्था हाथ पर हाथ रखे बैठ चुकी है।”

गांधीजी का कहना था, “शिक्षा का सम्बन्ध जीवन से है, अतः शिक्षा और जीवन का आपसी ताल-मेल ठीक होना चाहिए, क्रियात्मकता का संचार होना चाहिए।”

वास्तव में बुनियादी शिक्षा जीवन की शिक्षा है। वे तमाम बातें जो बुनियादी शिक्षा का आवश्यक अंग हैं, जीवन जीने के लिए उपयोगी हैं। आवश्यकता तो इस बात की है कि बुनियादी शिक्षा की उन उपयोगी बातों को हमें मुख्य धारा की शिक्षा में स्वीकारना चाहिए, अपनाना चाहिए।

बुनियादी शिक्षा में समवाय- आगे कैसे बढ़ें?

★ चन्द्रा शर्मा

देश ने 2009 में गांधीजी द्वारा प्रदत्त अमूल्य विरासत 'हिन्द स्वराज' कृति, जो सौ वर्ष पूर्व में भारतीय समाज के सुदृढीकरण के सूत्रों के रूप में निरूपित की गई थी, का शताब्दी वर्ष बड़े उत्साह के साथ मनाया। यह इस बात द्योतक है कि गांधी का जीवन दर्शन एवं शिक्षा दर्शन आज भी प्रासंगिक है। विदेशों में भी गांधी दर्शन की चाह बढ़ी है।

प्रसिद्ध लेखक श्री वेद व्यास ने ठीक ही कहा है, "हिन्द स्वराज में 21 वीं शताब्दी की भौतिक, संस्कृति और पूंजी आधारित राज्य शैली द्वारा उपस्थित गंभीर चुनौतियों का मुकाबला करने की अथाह क्षमता विद्यमान है।"

अपनी इस कृति में गांधीजी ने स्पष्ट संकेत दिए कि देश के इस स्वप्न को वास्तव में साकार करना है, तो उसके लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली को अपनाना होगा, जो बालक का सर्वांगीण विकास कर सके और जो कर्म को ज्ञानार्जन की प्रक्रिया से जोड़ सके, अपने परिवेश के संदर्भ में उसमें गहन समझ विकसित कर सके तथा अर्जित ज्ञान और जीवन की व्यावहारिक परिस्थितियों में समन्वय स्थापित कर सके। इस परिप्रेक्ष्य में 1937 में वर्धा सम्मेलन में 'नई तालीम' की संकल्पना प्रस्तुत की गई, जिसे बुनियादी शिक्षा के रूप में स्वीकार किया गया।

आचार्य कृपलानी ने इस शिक्षा पद्धति के विषय में ठीक ही कहा था, "गांधी द्वारा प्रदत्त शिक्षा की यह नई संकल्पना स्वाभाविक, व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक पद्धति है, जिसमें समाज के उत्थान की अथाह क्षमता है। आज देश को ऐसी ही शिक्षा की आवश्यकता

है।" स्वयं गांधीजी ने कहा कि देश के लिए मेरी तरफ से यह सबसे बड़ा उपहार है।

बुनियादी शिक्षा के पांच सिद्धान्तों में समवायी शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त रहा है। इस सिद्धान्त के संदर्भ में गांधीजी ने ज्ञान की समग्रता के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए, कर्म और ज्ञान के मध्य समन्वय स्थापित करने की बात कही। उन्होंने बालक के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा में समवाय को आवश्यक बताया।

गांधीजी के अनुबन्ध या समवाय के सिद्धान्त संबद्ध ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के सम्बन्ध की समझ पैदा करना है, जिससे ज्ञान जीवनोपयोगी हो सके। अध्ययन की दृष्टि से ज्ञान के विभिन्न क्षेत्र दिखाई देते हैं, किन्तु वास्तव में विभिन्न विषय अपना अलग-अलग अस्तित्व रखते हुए अनुबन्धित हो सकते हैं। जैसे इतिहास को समझने के लिए उसका अनुबन्ध भूगोल से होना आवश्यक है। इसी प्रकार अर्थशास्त्र को समझने एवं समझाने के लिए पर्यावरणीय पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक होता है। गांधीजी के अनुसार ज्ञान और क्रियाशीलता को जोड़कर ही जीवनोपयोगी शिक्षा दी जा सकती है। क्योंकि वास्तविक ज्ञान क्रियाशीलता में ही निहित रहता है। क्रियाशीलन से ही ज्ञान का सृजन होता है। इसी को आधुनिक शिक्षाशास्त्र में ज्ञान के निर्माण के सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार बालक की रचनात्मक, सृजनात्मक एवं निर्माणात्मक प्रवृत्तियों के अन्दर ज्ञान निहित रहता है, और समवाय के लिए शिक्षकों

★ गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में कार्यरत।

को इस ज्ञान के निर्माणवादी सिद्धान्त को समझना आवश्यक होता है। बालक उद्देश्यपूर्ण क्रियाशीलन, उद्योग, सामाजिक परिवेश तथा भौतिक परिवेश से स्वाभाविक रूप से ज्ञान अर्जित करता है और भविष्य में उसे ही इस ज्ञान का उपयोग भी करना होता है। गांधीजी के अनुसार कर्म की शिक्षा ही ज्ञान को पूर्ण बनाती है, जो जीवन को सार्थक करती है।

कर्म के अन्तर्गत वे सभी क्रियाएं एवं कार्यकलाप आ जाते हैं, जिनका सम्बन्ध शिल्प व बालक के सामाजिक जीवन तथा प्राकृतिक वातावरण से है, जिनसे बालक निरन्तर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अन्तःक्रिया करके अनुभव प्राप्त करता है। बालक के इन अनुभवों में संतुलन और सामंजस्य स्थापित करना और उसके द्वारा ज्ञानार्जन की इस क्रिया को सुलभ बनाना ही समवाय पद्धति है।

इस पद्धति के तीन मुख्य पहलू हैं— पहला, बालक का प्राकृतिक वातावरण; दूसरा, बालक का सामाजिक वातावरण और तीसरा, बालक के लिए कोई उपयुक्त उपयोगी शिल्प अथवा हाथ का काम। इन तीनों पहलुओं के सापेक्ष में बालक, जो भी क्रियाकलाप करते हुए अनुभव प्राप्त करता है, उसे सुसम्बद्ध और सुव्यवस्थित करने की मनोवैज्ञानिक विधि को समवाय पद्धति कहा जाता है। इस पद्धति के द्वारा बालक के 'कर्म', 'भावना' एवं 'ज्ञान' में समन्वय स्थापित होता है।

सभी आधुनिक शिक्षाशास्त्री और शिक्षा-विचारक एकमत से यह स्वीकार करते हैं कि संसार के सभी ज्ञानात्मक विषयों में पारस्परिक सम्बन्ध है। ज्ञान को एक इकाई के रूप में प्रस्तुत करके समस्त विषयों को एक साथ पढ़ाना ही श्रेष्ठ शिक्षा है।

गांधीजी मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित सह-सम्बन्ध के सिद्धान्त के महत्त्व को स्वीकार करते हैं तथा जीवन के लिए उपयोगी हर एक ज्ञान का, उद्योग केन्द्रित (हाथ से काम) करने की प्रणाली का समर्थन

करते हैं। उन्होंने समवाय से होनेवाले लाभ बताए। ज्ञान की अखण्डता का बोध, विषयों की गहराई को समझना, व्यावहारिक एवं जीवनोपयोगी ज्ञान तथा अनुभवों के आधार पर बच्चों में भविष्य की निर्माण क्षमता का विकास होता है। समवाय से शिक्षा रोचक और आनन्ददायी बनती है।

बुनियादी शिक्षा के इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त 'समवाय' (अनुबन्ध) को अपनाने की दिशा में हम आगे कैसे बढ़ें। यह मुख्य चुनौती हमारे सामने है। इस संदर्भ में देश तथा विशेषकर गुजरात की बुनियादी शिक्षा से जुड़ी विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में प्रयास एवं प्रयोग किये जा रहे हैं।

हाल ही में, बुनियादी शिक्षा की वर्तमान स्थिति को जानने के लिए गुजरात विद्यापीठ द्वारा एक शोध अध्ययन किया गया था। इस अध्ययन में गुजरात में संचालित लगभग 600 विभिन्न शिक्षण संस्थाओं का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में ज्ञात हुआ कि लगभग शत-प्रतिशत संस्थाओं को अनुबन्ध एवं समवाय की सतही जानकारी तो है, किन्तु व्यावहारिक रूप लगभग 65% संस्थाओं ने समवाय का उपयोग होना स्वीकार किया है। समवाय मुख्यतः विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, कृषि आदि विषयों में हो रहा है। उद्योगों के साथ यह उतना प्रभावी नहीं हो पा रहा है। इस संदर्भ में प्रमुख कठिनाइयां बताई गईं, जो इस प्रकार हैं —

1. शिक्षकों में अनुबन्ध एवं समवाय स्थापित करने की समझ और कुशलता की कमी।
2. शिक्षक-प्रशिक्षण में छात्राध्यापकों में समवाय के कौशलों को विकसित करने का प्रयास नहीं किया जाता।
3. समवाय के संदर्भ में पठन सामग्री एवं साहित्य का उपलब्ध न होना।
4. शिक्षकों में प्रयोग धर्मिता एवं नवाचार की भावना की कमी।

प्रकृति की सैर

★ रितिका, मिताली, आदित्य, तनवी, कनिष्का

पर्यावरण अध्ययन के संदर्भ में विद्या भवन प्रकृति साधना केन्द्र, भीलों का बेदला पर विद्या भवन जूनियर स्कूल (कक्षा 4 व 5) के बच्चों का एक भ्रमण रखा गया था। इस भ्रमण में बच्चों के द्वारा उनके अनुभवों के बारे में अभिव्यक्त विचारों का संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।



हम विद्या भवन जूनियर स्कूल में कक्षा 4 और 5 में पढ़ते हैं। जब बताया गया कि हमें उस स्थान पर ले जा रहे हैं, जहां पर हम प्रकृति में पायी जानेवाली वनस्पति तथा जीव-जन्तु से रूबरू होंगे तो बड़ा अच्छा लगा। जीवन की वास्तविक

परिस्थितियों का अध्ययन करने का अनुभव और आनन्द अलग ही होता है, जो हमें ज़िन्दगीभर याद रहता है। हम सभी छात्र-छात्राएं उत्सुकता से उस दिन का इन्तज़ार कर रहे थे। इस बीच हमारे अध्यापकों ने हमें सूचना दी कि शनिवार को

★ विद्या भवन जूनियर स्कूल के बच्चे।

सुबह हम स्कूल से बस द्वारा विद्या भवन प्रकृति साधना केन्द्र के लिए प्रस्थान करेंगे। शनिवार के दिन हम स्कूल के गणवेश में बस द्वारा प्रातः 9 बजे प्रकृति साधना केन्द्र पहुंचे। जैसे ही हम उस स्थान पर पहुंचे, प्रकृति के हरे-भरे पौधों ने हमारा स्वागत किया। ऐसा शान्त वातावरण जो शहर के भीड़-भाड़, शोरगुल, वाहनों के धुंए, आदि से अलग व दूर। शहर के कोलाहल के विपरीत यहां शान्त वातावरण, पक्षियों की चहक, एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर पक्षी उड़ते हुए नज़र आने लगे। यहां रंग-बिरंगी तितलियां मन को आकर्षित कर रही थीं। वे भी एक पौधे के फूलों का रस लेकर दूसरे पौधे पर जाकर बैठती थीं। सचमुच उनको भी प्रकृति में इस प्रकार विचरण करने का आनन्द आ रहा था। हमें तितलियों के उड़ने, फूलों पर बैठने और पुंकेसर व परागकण के बारे में पुस्तकों से मिली जानकारी को, वास्तव में देखना तथा अनुभव करना हमारे लिए कभी न भुलानेवाली बात थी। थोड़ा विश्राम करने के बाद, हम वनस्पति के अध्ययन के लिए केन्द्र के अनुभवी विशेषज्ञ की निगरानी में ट्रैकिंग (सैर) के लिए रवाना हुए। ट्रैकिंग का नाम लेते ही, सभी का मन कुतूहल से भर गया। हम सोचने लगे कि ट्रैकिंग क्या है, कैसे होगा, इन सारे प्रश्नों को लेकर हमारे मन में एक जिज्ञासा उभरी।

ट्रैकिंग पर जाने से पहले हमें आवश्यक जानकारी दी गई, जिसमें हमें बताया गया कि क्या करना है? क्या नहीं करना है? इस ट्रैकिंग में, हमें यह भेद करने का अवसर मिला कि, झाड़ी कौन सी होती है, पेड़ क्या होता है? विभिन्न पेड़ों पर पायी

जानेवाली पत्तियों की बनावट, जमावट, संरचना, आकार आदि का बोध भी हमें हुआ। भ्रमण के समय केन्द्र पर हमें यह जानकारी दी गई कि पर्यावरण में अनावश्यक छेड़छाड़ न हो तथा प्रमुख रूप से उस स्थान पर किसी प्रकार की प्लास्टिक से बनी चीजें प्रतिबंधित हैं तथा वहां पर पाये जानेवाले पक्षियों, जीव जंतुओं आदि के स्वभाव से छेड़छाड़ न करें। अन्य प्रतिबंधित चीजें जैसे गाने-बजाने के साधन आदि वर्जित हैं। ये जानकारियां हमारे दैनिक जीवन में काफ़ी उपयोगी होंगी क्योंकि प्रकृति द्वारा निर्मित पर्यावरण या वातावरण में किसी भी प्रकार का अवांछनीय परिवर्तन होगा तो प्रकृति में बहुत बड़ा बदलाव या असंतुलन आयेगा। हमने यह भी देखा कि समतल भूमि की वनस्पति, ढलानवाली भूमि की वनस्पति तथा पहाड़ की वनस्पति में क्या भेद है? हमें बताया गया कि पेड़ के कौन-कौन से भाग उपयोगी होते हैं तथा हम उनकी सुरक्षा कैसे करें? जैसे पलाश के पेड़ का उपयोग। हम जानते थे कि पत्तल-दूना पत्तों से बनता है। परन्तु प्रकृति में उस पेड़ को देखकर, सचमुच उसकी उपयोगिता का हमें पता चला।

ट्रैकिंग के समय हमें फूलों के बनावट की जानकारी हुई। हमने देखा कि फूलों के कौन-कौन से भाग क्या-क्या कार्य करते हैं? प्रकृति साधना केन्द्र के बैठक कक्ष में कुछ वर्कशीट करने के लिए दी गई, जिसमें हमने जो कुछ देखा, सीखा तथा अनुभव किया, उसको वर्कशीट में लिखा। इस प्रकार का प्रत्यक्ष अनुभव व अभ्यास हमारे लिए काफ़ी महत्वपूर्ण था, जो जीवन में कभी भी भुलाया न जा सकेगा।

समवायी शिक्षा में व्यक्तित्व का विकास

★ दयाल चन्द्र सोनी

लेखक बुनियादी तालीम का रचा-पचा व्यक्तित्व है, जिसने अपना पूरा जीवन बुनियादी शिक्षा के आचरण एवं व्यवहार के लिए समर्पित कर दिया। पूर्व अंक में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'बुनियादी शिक्षा क्या और कैसे' से व्यक्तित्व का अद्वैत विकास तथा शिक्षा में कर्मयोग का कुछ हिस्सा दिया गया था। इसका शेष भाग इस आलेख में प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें उसने मन, वचन और कर्म में एकता के साथ व्यक्तिवाद और समाजवाद के समन्वय को बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त में देखा है और विश्लेषित किया है।

बुनियादी शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें बड़ा एकत्व पाया जाता है। 'एकत्व' या 'समग्रता' बुनियादी शिक्षा का एक प्रमुख तत्त्व है। बुनियादी शिक्षा में उत्पादक दस्तकारी के माध्यम से शिक्षा देना, जीवन के बुनियादी पहलुओं की सर्वांगपूर्ण शिक्षा करना, सभी लोगों में न केवल समानता देखते हुए, बल्कि सब लोगों में मौलिक एकता देखते हुए अहिंसक या सर्वोदयी शिक्षा देना और शिक्षा के पात्र अर्थात् विद्यार्थी को उसके देश और काल से भिन्न नहीं समझना और पात्र को उसके देश-काल में सक्रिय और सावधान भाग दिलाते हुए उसकी शिक्षा करना, इन सभी बातों में जो बात सर्वव्यापी और प्रमुख है, वह यही है कि बुनियादी शिक्षा से समग्रता या एकीकरण का तत्त्व ही सर्वोपरि है। बुनियादी शिक्षा में व्यक्ति के मन, वचन और कर्म में एकीकरण और इसके साथ ही व्यक्तिवाद और समाजवाद का समन्वय देखना है। ये सभी प्रकार के एकीकरण हम बुनियादी शिक्षा के 'समवायी सिद्धान्त' में भली प्रकार देख सकते हैं। जाकिर हुसैन कमेटी या गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा पर जो कुछ लिखा और हरिपुरा-कांग्रेस ने भी बुनियादी शिक्षा को मान्यता देते हुए जो प्रस्ताव



स्वीकृत किये, उनमें 'समवाय' शब्द का प्रयोग

★ स्व. श्री दयाल चन्द्र सोनी, 1941 में स्थापित विद्या भवन बुनियादी मदरसे के प्रथम प्रधानाध्यापक थे।

शायद ही कहीं हुआ हो। पर उसके मूल सिद्धान्तों में जो यह कहा गया है कि जो भी शिक्षा-दीक्षा बच्चों को दी जाय, वह किसी न किसी उत्पादक दस्तकारी अथवा देश और काल अर्थात् प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण के माध्यम से दी जाय, इसी मौलिक सिद्धान्त में से 'समवाय' का सिद्धान्त निकला है और यह बुनियादी शिक्षा का मुख्य सिद्धान्त बन गया है। बुनियादी शिक्षा की सारी समस्या (जहां तक कि शिक्षक का संबंध है) समवाय की समस्या बनी हुई है। जिस शिक्षक से पूछिये, उसकी मुख्य समस्या समवाय ही है।

समवाय को चाहे इस अर्थ में लीजिये कि उत्पादक हस्त-निर्मित व्यवसाय की मार्फत शिक्षा की जाय, चाहे समवाय का अर्थ यह लिया जाय कि जीवन की सभी बुनियादी बातों का सर्वांगीण शिक्षण किया जाय, चाहे उसका यह अर्थ लिया जाय कि शिक्षा समाज के शोषण पर आधृत न होकर विद्यार्थियों द्वारा की गयी सक्रिय समाज सेवा पर आश्रित हो, चाहे हम उसका अर्थ यह लें कि विद्यार्थी अपने देश और काल की उन्नति में सहयोग दे और इस प्रकार अपनी उन्नति को अपने देशकाल की उन्नति से जोड़े। सबका सार यह निकलता है कि विद्यार्थी के मन, वचन और कर्म में एकीकरण साधा जाना चाहिए, ताकि उसके व्यक्तित्व में द्वन्द्व न हो, और उसके व्यक्तित्व का अद्वैत विकास हो सके। इस प्रकार उद्योग की मार्फत शिक्षा देना, जीवन की बुनियादी बातों की समग्रतापूर्वक शिक्षा देना अथवा विद्यार्थी के देश और काल की उन्नति की विद्यार्थी की शिक्षा का आधार बनाना, ये सब बातें केवल आर्थिक या सामाजिक या मनोवैज्ञानिक ही नहीं हैं, जैसा कि उन्हें समझा जाता है, बल्कि वास्तव में इन सब बातों और दृष्टियों के पीछे एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण भी है, जिसे ठीक तरह समझा और

याद रखा जाना चाहिए। यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण यह है कि मनुष्य के मन-वचन-कर्म में एकता होनी चाहिए, क्योंकि इसी प्रकार मानव अंत में अपनी आत्मा का दर्शन कर सकता है, इसी प्रकार यह सच्चे और स्थायी सुख या आत्मिक शांति को प्राप्त कर सकता है और ऐसे ही लोग समाज को भी सुख पहुंचा सकते हैं और समाज में अथवा संसार में शांति की स्थापना कर सकते हैं। बुनियादी शिक्षा गांधीजी के सारे जीवन की अंतिम देन है, जो उनकी ओर से हमारे राष्ट्र को दी गयी। उनकी इस देन में उनके सारे जीवन का निचोड़ भरा है। वास्तव में शिक्षा ही वह साधन है जिससे एक अहिंसक क्रान्तिकारी महापुरुष समाज को बदलने के लिए अथवा संसार की समस्याओं का स्थायी हल ढूंढने के लिए प्रयुक्त कर सकता है। गांधीजी आधुनिक युग की शांति की समस्या को सुलझाना चाहते थे और वे जानते थे कि जब तक मनुष्य की शिक्षा ऐसी न होगी कि मन, वचन और कर्म में एकता उत्पन्न हो सके, तब तक न तो व्यक्ति सुख और शांति का अनुभव कर सकता है और न समाज में ही सुख और शांति स्थापित हो सकती है। अतः यह स्वाभाविक है कि गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा पर यह आशा बांधी हो कि इस तरह की शिक्षा द्वारा (जिसमें मनुष्य अपने मन-वचन-कर्म में अभिन्नता स्थापित करने में सहायता पाता हो) ही उनके जीवन का संदेश सफल हो सकता है। गांधीजी ने स्वयं कहा था : "अगर हम कौमी और अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष को बंद करना चाहते हैं, तो हमारे लिए ज़रूरी है कि जिस शिक्षा की मैंने यहां हिमायत की है, उससे अपने बालकों को शिक्षित करके शुद्ध और सुदृढ़ आधार पर उसका प्रारंभ करें।" इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि बुनियादी शिक्षा को महात्मा गांधी हमारे समाज

या हमारे संसार की शांति—समस्या (जो कि आज मानव—जाति के जीवन या मरण का गंभीर प्रश्न बनी हुई है) का महत्त्वपूर्ण हल मानते थे, जिसका कारण यही था कि इस योजना की तह में अहिंसा तथा मन—वचन—कर्म की अविभक्त शिक्षा निहित है।

समवाय को समझने की आवश्यकता

समवाय का अर्थ संकीर्णता से नहीं लिया जाना चाहिए। समवाय का अर्थ यह नहीं है कि बच्चों को किसी तरह की कोई बात तब तक मत बताओ, जब तक कि उद्योग या सामाजिक या भौतिक वातावरण से उस बात को किसी प्रकार जोड़ नहीं लिया जाय। इस तरह की कट्टरपंथी को समवाय नहीं कहा जाता। हमें समवाय का गहरा अभिप्राय समझकर अपनी शाला चलानी चाहिए और अपने विद्यार्थियों को शिक्षा देनी चाहिए। ज्ञान ज्ञान के लिए नहीं है, बल्कि ज्ञान जीवन के लिए है, दर्शन भी कोरे दर्शन के लिए नहीं है, बल्कि दर्शन जीवन के लिए है। अतः मनुष्य को ऐसी शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए, जिसमें ज्ञान ज्ञान के लिए एक साध्य बन जाय। परंपरित शिक्षा में किसी चीज को सिखाना केवल इस आधार पर उचित माना जाता है कि अमुक बात पाठ्यक्रम में निर्धारित है और जो बात परीक्षा में आ सकती है, उसको सिखाने का औचित्य तो अपने—आप बहुत बढ़ जाता है। ये जो औचित्य हैं, वे सर्वथा कृत्रिम हैं। फिर इस प्रकार जो ज्ञान मिलता है, वह भी वास्तविक अनुभवरूप ज्ञान नहीं होता। आज के विद्यार्थी मानो ज्ञान के बोझ से दबे जा रहे हैं और जहां तक व्यावहारिकता का संबंध है, वे उन लड़कों की तुलना में बहुत पिछड़े रहते हैं, जो कि अपने माता—पिता की निर्धनता के कारण पढ़ने—लिखने में समय नहीं दे सकते और कुछ न कुछ धंधा करके माता—पिता को दो पैसे कमाकर

देने को मजबूर होते हैं। पर इन लड़कों में यह कसर रहती है कि वे पढ़ना—लिखना ठीक से नहीं जानते और इसलिए भाषा के प्रयोग में पिछड़े रहते हैं और न तो उसमें चिन्तन—शक्ति का विकास हो पाता है और न वे अपने काम में ही अधिक उन्नति कर सकते हैं। समवाय का अर्थ यह है कि विद्यार्थी के जीवन की समस्या में से ज्ञान की आवश्यकता और ज्ञान भी उत्पन्न हो। इस प्रकार यदि बहुत—सा ज्ञान, जो विद्यार्थियों को हमारे विद्यालयों में आज दिया जाता है, न भी दिया जा सके, तो कोई घाटे की बात न होगी। आज की शिक्षा को हम 'ज्ञान का पूंजीवाद' कह सकते हैं। यह समवाय के सिद्धान्त के प्रतिकूल है। ज्ञान के परिग्रह की वृत्ति अनुचित है। जिस प्रकार हवा कोई परिग्रह की वस्तु नहीं है, बल्कि सांस लेने के लिए है, उसी प्रकार ज्ञान कोई परिग्रह की वस्तु नहीं है, बल्कि वह जीवन में जब जितना चाहिए और जिस शाखा का चाहिए, प्राप्त करके काम में लेने के लिए है। जिस प्रकार दीपक का कोई अपना महत्त्व है, उसी प्रकार ज्ञान हमारे कर्म के संदर्भ में या हमारे कर्म को आलोकित करने के लिए ही महत्त्वपूर्ण है और वास्तविकता तो यह है कि ज्ञान कहा भी वही जाता है, जो कर्म से अनुभूत हो।

इस विषय में आचार्य कृपालानी की पुस्तक 'दी लेटेस्ट फैड' जो कि गांधीजी की बुनियादी शिक्षा—योजना के विषय में ही लिखी गयी थी, का 'फैलेसी ऑफ वडर्स' नामक प्रकरण पठनीय है, जिसमें उन्होंने बताया कि अनुभवरहित कोरा शाब्दिक ज्ञान आज की दुनिया में कितना अनर्थ कर रहा है। ज्ञानरूपी तीव्र औषधी को कर्म का अनुपान चाहिए, वरना वह ज्ञान व्यक्ति और समाज दोनों ही के लिए लाभप्रद होने के बजाय हानिप्रद होता है। ज्ञान अभ्यास का विषय है, न कि

वाचालता का, जैसाकि परंपरित शिक्षा ने उसे बना रखा है और अभ्यास ज्ञान पोषक है, न कि केवल यांत्रिक परिश्रम का, यह बुनियादी शिक्षा तथा उसमें निहित समवाय—सिद्धान्त का दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण का उच्चतर हेतु यह है कि ज्ञानकर्म के सामंजस्य में ही मनुष्य की निष्ठा जाग्रत होती है, इसी से उसका चरित्र पनपता है, इसी से उसके व्यक्तित्व में अद्वैत उत्पन्न होता है और द्वन्द्व मिटता है, और इसी में समाजवाद और व्यक्तिवाद का झगड़ा समाप्त होकर विश्व—शांति का मार्ग प्रशस्त होता है। समवाय को समझाने में यदि यह बताना शुरू किया जाय कि पाठ्यक्रम के अमुक आइटम को समवाय द्वारा अमुक तरीके से पढ़ाओ, तो वह नये अभ्यासी के लिए कुछ काम की चीज़ भले ही हो सके, पर इस तरह समवाय की समस्या हल नहीं हो सकती। समवायी शिक्षण वह शिक्षण है, जिसको इस बात का ध्यान रखकर दिया जाय कि मनुष्य के ज्ञान और उसके जीवन के आचरण में सामंजस्य होना चाहिए। समवाय की कसौटियों पर कसने से जो शिक्षण खरा उतरता हो, उसे समवायी शिक्षण माना जाना चाहिए, चाहे शिक्षक किसी पाठ को तकली—चरखे से या हल—बैल से संयुक्त किये बिना ही क्यों न पढ़ा दे।

शिक्षक के व्यक्तित्व में अद्वैत का अभ्यास आवश्यक

सच्चा समवाय वह है कि जब काम किया जाय, तो काम को बुद्धि के जल से सींचा जाय और जब बौद्धिक ज्ञान प्राप्त हो, तब उस ज्ञान को कर्म की खाद दी जाय। पर ये बातें तब तक संभव नहीं हैं, जब तक कि शिक्षक अपने निज के जीवन में मन, वाणी और कर्म का एकीकरण करने को तैयार न हो और साथ ही जब तक कि शिक्षा—विभाग के अधिकारी और मंत्री लोग भी अपने मन, वचन और

कर्म का एकीकरण करने को तैयार न हों। सबसे उत्तम समवाय बुनियादी शिक्षा में तब होगा, जब कि विद्यार्थी को ऐसा स्पष्ट दिख सके कि जो लोग उसकी शिक्षा करने के लिए जिम्मेदार हैं, उनके निज के जीवन में और उनके उपदेशों में कोई भेद नहीं है। एकीभूत व्यक्तित्ववाला शिक्षक ही सफल बुनियादी शिक्षा की प्रमुख शर्त है। पर ऐसे ही शिक्षकों का आज अभाव है। प्रायः बुनियादी विद्यालयों में पाठक ऐसे शिक्षकों को बहुतायत से पा सकते हैं, जो बच्चों से सूत कतवाकर खादी का महत्व समझाते हुए उसका मौखिक गुणगान करते हैं, पर शरीर पर जिनके खादी का एक भी वस्त्र नहीं है। ट्रेनिंग स्कूलों में अधिकारीगण ऐसे पाये जाते हैं, जो गांधी—जयंती के दिन बन—ठनकर भाषण देने के लिए खादी का स्पेशल सूट भी अपने पास रखते हैं और यह सूट उस दिन भी काम में आता है, जबकि कोई सर्वोदय नेता, जिसकी आसानी से उपेक्षा नहीं की जा सकती हो, संस्था में किसी कारण आ जाये। इन अधिकारियों से बुनियादी शिक्षा की ट्रेनिंग प्राप्त करके स्कूलों में जो शिक्षक पहुंचते हैं, उनसे मन, वाणी और कर्म की एकता की आशा कैसे की जा सकती है और जब शिक्षक ही मन, वाणी और कर्म की एकता पर खरे नहीं उतरते हों, तब इस बात का क्या अर्थ है कि ये शिक्षक अपनी शाला या अपनी कक्षा में समवाय की पद्धति से पढ़ाते हैं? इस तरह के शिक्षाधिकारियों और शिक्षकों के कारण देश में ढोंग की तालीम का भले ही प्रचार हो सके, पर बुनियादी शिक्षा अर्थात् मन—वाणी—कर्म की एकतावाले चरित्र की शिक्षा तो नहीं हो सकती। वास्तव में समवाय और बुनियादी शिक्षा से वे लोग कहीं अधिक निकट हैं, जो कि सच्चे मन से किसी कारण बुनियादी शिक्षा का तीव्र विरोध करते हैं, और न तो बुनियादी शिक्षा का काम करते हैं और न बुनियादी शिक्षा से सहयोग

करते हैं। ये लोग उन ढोंगियों से तो बहुत अच्छे हैं, जो केवल सरकारी धन को प्राप्त करने के लिए ही बुनियादी शिक्षा को नाममात्र के लिए अपनाते हैं और फिर अंदर-ही-अंदर बुनियादी शिक्षा की जड़ काटते हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि परंपरित शिक्षा की तुलना में बुनियादी शिक्षा में व्यक्तित्व के एकीकरण के अवसर कहीं अधिक हैं, परंतु इसमें भी कोई संदेह नहीं कि बुनियादी शिक्षक अपने खुद के जीवन में बुनियादी शिक्षा के जीवन-दर्शन को पचाने के लिए तैयार नहीं हैं और केवल स्वार्थ-सिद्धि के लिए उसका उपदेश मात्र करते हैं, तो बुनियादी शिक्षा से ऐसे पाखंडी छात्र निकलेंगे, जो पहलेवाली शिक्षा के स्नातकों की तुलना में बुरे होंगे।

परंतु यदि शिक्षक अपने जीवन में मन-वचन-कर्म की एकता साधने को तैयार हो, तो निःसंदेह बुनियादी शिक्षा से विद्यार्थी और शिक्षक दोनों के व्यक्तित्व में अद्वैत उत्पन्न होगा। यहां कोई यह प्रश्न कर सकता है कि यदि शिक्षक के मन-वचन-कर्म में एकता पायी जाय, तो फिर बुनियादी शिक्षा में ही क्यों, परंपरित शिक्षा में भी चरित्रवान् विद्यार्थी तैयार होंगे। हां, यह ठीक हो सकता है, पर परंपरित शिक्षा इस विषय में बुनियादी शिक्षा की होड़ नहीं कर सकती, क्योंकि बुनियादी शिक्षा में तो सिद्धान्त ही यह है कि कर्म का ज्ञान से समवाय होना चाहिए। उदाहरण के लिए बुनियादी मंदरसे का बालक जब अपने ज्ञान का कर्म में हवन करने के लिए भंगी की झाड़ू अपने हाथ में प्रत्यक्ष पकड़कर ग्राम-सफ़ाई के कार्यक्रम में भाग लेता है, तो यह कृत्य केवल शारीरिक या मानसिक कृत्य नहीं होता; बल्कि उसके पीछे एक नैतिक शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है, उसके पीछे एक जीवित श्रद्धा की आवश्यकता होती है। इसी

प्रकार जब बुनियादी विद्यालय में विद्यार्थी उद्योग करता है और उस उद्योग से वास्तविक अर्थ का उत्पादन होता है, तभी तो विद्यार्थी के सामने चोरी करने या न करने का प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से खड़ा होता है और उसके सामने अवसर होता है कि वह ईमानदारी के शब्द पर अमल करके ईमानदारी का स्वयं अनुभव करे या न करे। तेज तपती हुई धूप में जब एक कक्षा खेत पर काम करती है, तब छोटे और कमजोर बच्चे जल्दी थक जाते हैं। इस समय ही यह वास्तविक अवसर होता है कि दूसरे विद्यार्थी उनके साथ सहानुभूति दिखाकर उन्हें विश्राम करने को कहें या द्वेष और ईर्ष्या से काम लेकर उनकी थकान की शिकायत करें। परंपरित शिक्षा जिन बातों को जीवन में बेकार के झंझट मानती है और जिनसे उक्त कारण से बचना चाहती है, बुनियादी शिक्षा उनको शिक्षा में सजीवता और वास्तविकता पैदा करने के साधन मानकर उनको खुशी से अपनाती है। यही कारण है कि बुनियादी शिक्षा में चरित्र को बनाने के अवसर परंपरित शिक्षा की तुलना में बहुत अधिक हैं।

हमें युधिष्ठिर की-सी शिक्षा चाहिए, जिसमें युधिष्ठिर तब तक बराबर यह कहता रहा कि उसे सत्य बोलने का पाठ याद नहीं हुआ है, जब तक कि उसने यह नहीं देखा लिया कि आजीवन सत्य बोल सकने जितना अभ्यास और उतनी निष्ठा उसने अपने में उत्पन्न कर ली है। अतः जो शिक्षक समवाय को इस गहरी दृष्टि से देखेंगे कि समवाय वह उपाय है, जिससे विद्यार्थी के मन, वचन और कर्म का एकीकरण किया जाता है और जिससे स्वयं शिक्षक के मन, वचन और कर्म का भी एकीकरण होना चाहिए, वे शिक्षक बुनियादी शिक्षा के मर्म को समझकर बुनियादी शिक्षा का सच्चा काम करके राष्ट्र की अमूल्य सेवा करेंगे।

बुनियादी तालीम के विचार की पड़ताल

★ किशोर सन्त

इस लेख के लेखक ग्रामीण उत्थान, विशेषतौर से उदयपुर ज़िले के आदिवासी क्षेत्र के दबे-कुचले लोगों में जागरूकता लाने के संदर्भ में 'सेवा मंदिर' और 'उबेश्वर मण्डल' के माध्यम से काम करते हैं। इनकी शुरु से ही गांधी व्यक्तित्व व विचार में गहन रुचि रही है। प्रस्तुत लेख में गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में 'बुनियादी तालीम की समीक्षा और सशक्तिकरण' पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी (2006) में उनके द्वारा व्यक्त किए विचार को प्रस्तुत किया गया है।

बुनियादी तालीम पर बुनियादी चर्चा गुजरात में, अहमदाबाद में और वह भी गूजरात विद्यापीठ में होना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। गांधीजी की प्रेरणा, स्मृतियों और संबंधों से भरपूर उनकी इस जन्मस्थली एवं कर्मभूमि में रचनात्मक कार्यों और नई तालीम से जुड़े अनगनित व्यक्ति, संस्थाएं और कार्यक्रम हैं जो एक ओर नई तालीम को समझने और परखने में मदद कर सकते हैं और दूसरी ओर तीव्रता से चल रहे आधुनिक प्रगति के प्रवाह और व्यवस्थाओं की चुनौतियों का सामना करने और भविष्य की राह प्रशस्त करने का काम कर सकते हैं।

संगोष्ठी के शीर्षक के बारे में एक संशोधन रखना चाहूंगा। अंग्रेजी शीर्षक 'नई तालीम रिव्यूज़ एण्ड रिवाइटेलाइज़ेशन' में 'रिवाइटेलाइज़ेशन' का अनुवाद सशक्तिकरण किया गया है। 'सशक्तिकरण' वर्तमान में प्रचलित अंग्रेजी शब्द एम्पॉवरमेंट का अनुवाद है। इसका उद्देश्य है : कानून, हक-अधिकार बोध, क्षमतावर्धन एवं व्यवस्था सुधार द्वारा वंचित, दलित, उपेक्षित वर्गों की ताकत बढ़ाना। इसका अपना महत्त्व और स्थान है, परन्तु गांधीजी जनित नई तालीम के संदर्भ में 'रिवाइटेलाइज़ेशन'

का पुनः प्राणप्रतिष्ठा यानी जड़ में जान फूंकना/जान डालना/चेतना लाना है। ये सब त्याग, तपस्या, स्वानुशासन, सत्यशोधन, प्रार्थना, ध्यान, परस्पर सेवा, सहयोग एवं श्रमनिष्ठा की साधनाओं से संभव होते हैं। इसी प्रकार 'रिव्यूज़' के संदर्भ में उसका हिन्दी अर्थ के रूप में आत्मावलोकन, आत्मनिरीक्षण, आत्मचिंतन, परस्पर संवाद शब्द को जोड़ा जा सकता है।

बुनियादी तालीम की पड़ताल कई प्रकार से की जा सकती है। हम इसके मूल सिद्धान्तों को परख सकते हैं। इसके प्रयोगों और अनुभवों का विश्लेषण हो सकता है। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक संदर्भों में, इसके लिए बनी नीतियां, कानून और व्यवस्थाओं की जांच की जा सकती है। हम इसे अन्य शिक्षा पद्धतियों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से देख सकते हैं और इसके प्रति विरोध और आलोचना को गंभीरता से समझने का प्रयास कर सकते हैं। यह सब वाज़िब है और बुनियादी तालीम की सत्यता की स्थापना के लिए करना ज़रूरी है और शायद किया जा सकता है। परन्तु मैं अपनी बात को गांधीजी के बुनियादी तालीम के चिन्तन, आविष्कार और प्रयोग के पीछे उनकी मूलचेतना

★ उबेश्वर मण्डल, उदयपुर के संस्थापक।

पर केन्द्रित करना चाहूंगा। मेरी समझ में ये ही बुनियादी तालीम के बुनियादी पहलू हैं जिन्हें आज के विश्व संकट के संदर्भ में समझना अनिवार्य हो गया है। बुनियादी तालीम की बुनियादी बात को 'शुरुआती', 'आधारभूत', 'मौलिक', 'स्वदेशी', 'स्वावलम्बी', 'स्वचालित', 'श्रमनिष्ठ', आदि कई अर्थों में समझा जा सकता है। मैं इस सबके मूल में उस बुनियादी युगचैतन्य की बात रखना चाहता हूँ, जिस पर गांधीजी के स्वधर्म और कर्म की शुरुआत हुई और जिस पर वे अंत तक टिके रहे। इस युगदृष्टि को ध्यान में रखे बिना, बुनियादी तालीम की पड़ताल नहीं हो सकती।

गांधीजी को युगपुरुष और युगप्रवर्तक कहा गया है। इसका कारण यह है कि आधुनिक युग की आधुनिकता, पश्चिमी सभ्यता व उसकी संस्कृति के बारे में उनकी अपनी विशेष और स्पष्ट चेतना और समझ थी, जिसके आधार पर उन्होंने स्वयं अपने लिए युगप्रवर्तक की जिम्मेदारी ली, जो न केवल भारत के लिए बल्कि सारे विश्व और मानवता के लिए थी। इस हेतु उन्होंने अपने जीवन को एक युगचेष्टा, एक यज्ञ का रूप दिया। राम मनोहर लोहिया का कहना था कि बीसवीं सदी ने केवल एक ही प्रवर्तक महात्मा गांधी, और एक ही आविष्कार अणुबम को जाना है। अणुबम आधुनिक सभ्यता की परिणिति है और प्रवर्तक एक ऐसी कोख से आया है, जिसकी अभी तक पहचान नहीं हो सकी या जो अभी तक शक्ति सम्पन्न नहीं है। क्योंकि आधुनिक सभ्यता ने 'विचार' को पूरी तरह ताकत की सेवा में लगा दिया है।

गांधीजी ने सभ्यता के बारे में अपनी चेतना को 'हिन्द स्वराज' में इस प्रकार अंकित किया—

आधुनिक सभ्यता : गांधीजी ने आधुनिक पश्चिमी

सभ्यता के लिए हिन्द स्वराज में "शैतानी", 'अधर्मी', 'इसका झुकाव अनीति की ओर,' 'रोगी', 'निरीश्वरवादी', 'नाश करनेवाली', 'नाशवान', शब्दों का प्रयोग किया है।

सच्ची सभ्यता : गांधीजी की सच्ची सभ्यता की व्याख्या इस प्रकार है— "वह आचरण जिससे आदमी अपना फर्ज अदा करता है, फर्ज अदा करने के माने हैं, नीति का पालना करना, नीति का पालन करने का मतलब है, अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखना, ऐसे करते हुए हम अपने को (अपनी असलियत को) पहचानते हैं।"

भारतीय सभ्यता : गांधीजी ने हिन्दोस्तान की सभ्यता को इस प्रकार आंका "मैं मानता हूँ कि जो सभ्यता हिन्दोस्तान ने दिखायी है उसको दुनिया में कोई नहीं पहुंच सकता.. गिरा-टूटा जैसा भी हो, हिन्दोस्तान आज भी अपनी बुनियाद में मजबूत है", "सच्ची मस्ती तो उसी को चढ़ सकती है, जो ज्ञानपूर्वक समझ-बूझकर यह मानता हो कि हिन्द की सभ्यता सबसे अच्छी और यूरोप की सभ्यता चार दिन की चांदनी है।"

गांधीजी की इस युगचेतना में, पश्चिमी सभ्यता के मूल चरित्र दोष के साथ, एक गहरे युग संकट का भी अहसास था। वह मानवता के लिए इसके दुष्प्रभावों से अच्छी तरह परिचित थे और मानते थे कि भारत का इस रास्ते पर चलना न केवल अपनी लिए बल्कि विश्व के लिए भी विनाशमयी होगा।

इस त्रासदी से छुटकारा पाने के लिए गांधीजी ने अपनी जीवन शक्ति, एक ओर भारत की आजादी के लिए अहिंसक आन्दोलन खड़ा करने में लगाई, तो दूसरी ओर भारत में आन्तरिक शक्ति जागरण और समाज एवं धर्म व्यवस्था के सुधार के साथ

नये युग के सृजन और निर्माण के लिए प्रयोग किए, जिन्हें 1941 में 'रचनात्मक कार्यक्रम' का नाम दिया। 'नई तालीम' और प्रौढ़ शिक्षा' इसी संरचना के दो आयाम थे।

भारत में प्रचलित शिक्षा प्रणाली के बारे में गांधीजी के विचार और आलोचना, बच्चों की शिक्षा और लोक शिक्षा में किए गये सतत प्रयोग और नई तालीम के लिए दिए गये उनके मार्गदर्शक बिन्दु और आग्रह, यह दर्शाते हैं कि गांधीजी अपने लिए, अपने सहकर्मियों और भावी पीढ़ी के लिए नई तालीम के माध्यम से आधुनिक सभ्यता की भौतिक और मानसिक दासता से छुटकारा पाने व मानवीय/भारतीय परम्परा और मूल्यों की आधारशिला पर नये मानव, नये समाज और नये युग की संरचना का रास्ता बना रहे थे।

'रचनात्मक कार्यक्रम' के सातवें बिन्दु के रूप में गांधीजी ने स्पष्ट लिखा है, "नई या बुनियादी तालीम का उद्देश्य गांव के बच्चों को आदर्श ग्रामवासी बनाना है। यह मुख्यतया उन्हीं के लिए है, इसकी प्रेरणा गांव से आई है। आज की प्राथमिक शिक्षा एक ढकोसला है। वह बिना गांव और शहरों की ज़रूरतों को ध्यान दिए बनायी गयी है। बुनियादी शिक्षा बच्चों को, चाहे वह गांव के हों या शहर के, भारत की सबसे अच्छी परम्पराओं से जोड़ती है। यह शरीर और मन दोनों का विकास करती है और बच्चों को धरती से जोड़े रखती हैं। साथ ही यह उन्हें एक सुन्दर, गौरवशाली भविष्य की दृष्टि प्रदान करती है, जिसे साकार करने में वे शुरू से ही भागीदार बनते हैं।"

इसी प्रकार आठवें बिन्दु में, गांधीजी ने लिखा है, "अगर मेरे वश में हो, तो मैं प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से प्रौढ़ों को भारत की महानता और विशालता के

प्रति सचेत करूँ... मेरी प्रौढ़ शिक्षा बोलचाल के माध्यम से दी जानेवाली सच्ची राजनीतिक शिक्षा होगी... इसका फैलाव देश के कोने-कोने में होगा, इसलिए यह बिना भय के दी जा सकती है... इसके साथ साक्षरता को भी जोड़ना होगा।"

नई तालीम के कुछ बुनियादी स्रोतों, उद्देश्यों और आयामों को खोलने के पश्चात्, मैं आपके सामने, इक्कीसवीं शताब्दी की शुरुआत की परिस्थिति के बारे में कुछ विचार और इसमें हमारे दायित्व के बारे में कुछ प्रश्न रखना चाहूंगा।

'हिन्द स्वराज' के लगभग 100 वर्ष बाद यह जाहिर है कि जिस 'शैतानी' सभ्यता को गांधीजी ने नकारा था, उसका विश्वव्यापी विस्तार हुआ है। उसकी शक्ति असीम और अमर्यादित ढंग से बढ़ी है और इसने मनुष्य की अन्तर्तम भावना और चेतना में प्रवेश किया है। विश्वभर के चिन्तनशील मनुष्यों, वैज्ञानिकों और धर्मगुरुओं ने इसकी अपने-अपने ढंग से व्याख्या की है और इसके संकट को पहचाना है। शांति निकेतन के दार्शनिक अमलात दत्त ने आधुनिक सभ्यता की इस विडम्बना को उजागर किया है कि विश्व के बड़े देश एक ओर अपनी सुरक्षा के लिए हथियारों की होड़ में लगे हैं और दूसरी ओर सतत रूप से उपभोगवाद को बढ़ावा दे रहे हैं, जो आर्थिक विकास का मूल आधार माना जाता है। दोनों ही पर्यावरण की दृष्टि से हानिकारक हैं, परन्तु ये देश इस दौड़ और होड़ से बाहर निकल नहीं सकते। अब इसमें विकसित देशों के साथ चीन और भारत जैसे विशालकाय देश शामिल हो गये हैं। इस आर्थिक और राजनीतिक स्पर्धा के पीछे, जो सुख समृद्धि की कल्पना है, वह है इन्द्रिय वासनाओं की तुष्टि और तृप्ति। उर्दू शायर जिगर मुरादाबादी के शब्दों

में इसे यूँ कहा गया है—

**इस दौरे फानी में ऐ जिगर कोई इंकलाब
ना आ सका**

**कि बुलन्द हो के भी आदमी अभी ख्वाहिशों
का गुलाम है।**

समाजवादी चिन्तक किशन पटनायक अपने आप को 'प्रलयवादी' कहने में कोई संकोच नहीं रखते थे। उन्होंने तर्कसंगत दलीलों से आधुनिक सभ्यता में निहित विनाशकारी तत्त्वों और इनसे उभरी आर्थिक—सामाजिक विषमताओं को उजागर किया और गांधीजी और लोहिया के इस केन्द्रीय निष्कर्ष की ओर ध्यान दिलाया कि विश्व का पुनर्निर्माण आधुनिक सभ्यता के आधार पर नहीं हो सकता है।

पिछले कुछ दशकों से विश्व में पर्यावरण संकट की बात सामने आयी है। 1987 में ब्रुटलैण्ड कमीशन द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया कि प्रचलित विकास के प्रवाह पर्यावरण सुरक्षा की दृष्टि से टिकाऊ नहीं हैं। इस पर्यावरण के संकट का सबसे गंभीर पक्ष पृथ्वी के वातावरण में तापमान की वृद्धि से है, जिसके कारण हिमक्षेत्र तेजी से पिघल रहे हैं और जलवायु तंत्र के नियमित संतुलन बिगड़ रहे हैं। यहां तक कि अब अन्दाज़ लगाये जा रहे हैं कि धरती और मानव सभ्यता के लिए प्रलयसमान त्रासदी अगले दो या तीन दशकों में होगी या कुछ अधिक समय लगेगा और इतना समय है कि जिस प्रकार के विकास के प्रवाह में सभ्यता चल रही है और इस संबंधी जो ऊर्जा की खपत हो रही है, उसमें कुछ संशोधन या कमी की जा सकती है, ताकि प्रलय की संभावना को रोका जा सके।

भारत में बड़े पैमाने पर उभरा खेती का संकट और

किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्याएं, गांवों का टूटन और स्वराज के आधार पर उनके पुनर्गठन की असफलता, सतत बढ़ती आर्थिक असमानता, बेरोज़गारी, गांवों के शहर की ओर पलायन, अनियंत्रित शहरीकरण, सम्प्रदाय, जाति और लिंग के आधार पर फैल रही हिंसा और पर्यावरण—जल, जंगल, ज़मीन, वायुमण्डल—की गुणवत्ता और सामंजस्य का ह्रास, ये सब एक बड़ी त्रासदी के पूर्व के संकेत दिख रहे हैं।

उपर्युक्त परिदृश्य और विश्लेषण से हो सकता है हम सहमत न हों, परन्तु अगर गांधीजी को हम सार्थक मानते हैं, तो हमें नज़र से और अपने विवेक से, वर्तमान परिस्थिति को देखना होगा। वैश्वीकरण का हम जो भी अर्थ निकालें, वह हमें विश्व और मानवता से सरोकार रखने पर तो बाध्य करता है।

मूल प्रश्न यह है कि क्या हम बुनियादी तालीम और शिक्षा के नये प्रयोगों में लगे हुए गांधीजी की युग चेतना और चुनौती को केन्द्र बिन्दु बनाकर आज की विश्व परिस्थिति, विकास प्रवाह और व्यवस्थाओं पर गंभीरता से विचार करने, उसे समझने और इस आधार पर अपना दायित्व तय करने के लिए तैयार हैं? इसके पहले यह भी सोचा जा सकता है कि क्या आज के संदर्भ में गांधीजी की आधुनिक सभ्यता के बारे में आकलन/दृष्टि और उन द्वारा सुझाये गये विकल्प सार्थक और प्रासंगिक हैं? क्या भारतीय, विशेषकर ग्रामीण संदर्भ में गांधीजी द्वारा दर्शाये गये विकल्प की संभावनाएं आज भी मौजूद हैं या समाप्त हो गई हैं? और इन प्रश्नों संबंधी बुनियादी तालीम में चिन्तन, शोध कार्य और शिक्षण का क्या स्वरूप हो सकता है?

एक अंतिम बात आज के दौर में गांधीजी की उपस्थिति और प्रभाव के बारे में कहना चाहूंगा। इसे मैं हिन्दी साहित्यकार और चिन्तक जैनेन्द्रकुमार के शब्दों में रखना चाहूंगा। 1968 में उनके द्वारा गांधीजी पर लेखों के संग्रह 'अकाल पुरुष गांधी' के आमुख में वे लिखते हैं—

“ गांधीजी हमारे स्मरण में अभी संदेह और रूपाकार युक्त है। विस्मरण की कई परतों की गर्त उन पर चढ़ जाएगी तब संभव होगा कि धरती के भीतर से हमारी भावनाओं का सिंचन पाकर वे नये आविष्कार के तत्त्व के रूप में अंकुरित हों। इतिहास के गर्भ में पहुंचने पर फिर जो आविष्करण होगा वह व्यक्तित्व से उत्तीर्ण मानो मिथक के रूप में होगा। व्यक्ति नहीं तब वह सर्वथा एक जीवन

दर्शन के चित्र और प्रतीक होंगे। मैं मानना चाहता हूं कि गांधी का एक जीवन दर्शन के चित्र और प्रतीक होंगे। मैं मानना चाहता हूं कि गांधी का यह निर्व्यक्तिक रूप मानव—इतिहास के एक नये युग आरम्भ का बिन्दु होगा। कहिए कि वहां से एक समग्र और नूतन धर्म का प्रवर्तक होगा। वहां अध्यात्म और विज्ञान आपस में पृथक् तट न रहेंगे बल्कि मूल चैतन्य के अधिष्ठान से अभिन्न होके रहेंगे।”

इस लेखन के लगभग दो पीढ़ियों के बाद बॉलीवुड की लोकप्रिय हुई फिल्म 'लगे रहो मुन्ना भाई' के माध्यम से गांधीगिरी का आविष्कार, शायद इस बात का संकेत है कि 'निर्व्यक्तिक' गांधी भारत के युवा पीढ़ी के मानस में नवजागरण के लिए करवटें ले रहा है।

साभार : 'नई तालीम समीक्षा और सशक्तिकरण' राष्ट्रीय विचार संगोष्ठी
गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद— (20 से 22 दिसम्बर 2006) से उद्धृत

भाषा के संदर्भ में गांधीजी के विचार

★ लक्ष्मी नारायण मिश्र

इस लेख में गांधीजी के भाषा संबंधी विचारों का संकलन है। गांधीजी के भाषा के संदर्भ में विभिन्न अवसरों और अलग-अलग समय पर उनके द्वारा व्यक्त विचारों को लेख में, इस प्रकार संयोजित किया गया है कि हम उनके शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा सम्बन्धी दर्शन को आसानी से समझ सकें।

“मातृभाषा के विकास के लिए अंग्रेजी भाषा की जानकारी की नहीं, मातृभाषा के प्रेम की, उसके प्रति श्रद्धा की ज़रूरत है।”

“भाषा के विकास पर विचार करें तो भी हम इसी निर्णय पर पहुंचेंगे। भाषाएं उनके बोलनेवाले लोगों के चरित्र का प्रतिबिम्ब होती हैं। दक्षिण अफ्रीका के हबिशियों की भाषा जानने से हम उनके रीति-रिवाज वगैरा जान सकते हैं। भाषा जातियों के गुण कर्म के अनुरूप होती है और बनती है। यह बात हम निःसंकोच कह सकते हैं कि जिस भाषा में वीरता, सच्चाई, दया आदि लक्षण नहीं होते, उस भाषा को बोलनेवाली जातियों में वीर, सत्यशील और दयालु लोग नहीं होते। ऐसी भाषा में दूसरी भाषाओं से जैसे-तैसे वीरता या दया सूचक शब्द ठूस देने से न उस भाषा का विस्तार हो सकता है, न उस भाषा के बोलनेवाले वीर ही बनेंगे। शौर्य किसी में भी बाहर से नहीं भरा जा सकता है। हां, वह भीतर हो और उस पर जंग लग गया हो, तो जंग हटते ही वह चमक उठेगा। हमने बहुत समय तक गुलामी भोगी है, इसलिए हममें विनय की अतिशयता सूचित करनेवाले शब्दों का बड़ा भण्डार दिखाई देता है।”

“भाषा मनुष्य की बुद्धि के सहारे चलती है, इसलिए जब किसी विषय तक बुद्धि नहीं पहुंचती, तब भाषा अधूरी रह जाती है। भाषा का साधारण नियम यह है कि लोगों के मन में जो विचार भर जाते हैं, वे ही उनकी भाषा में व्यक्त होते हैं। लोग विवेकशील होंगे तो उनकी बोली में विवेकशीलता होगी, लोग मूढ़ होंगे तो उनकी बोली में मूढ़ता होगी। अंग्रेजी में कहावत है कि मूर्ख अपने औजारों को दोष देता है। भाषा को अपूर्ण बतलानेवाले भी कम ज़्यादा ऐसे ही समझिये।”

“परभाषा का ज्ञान प्राप्त करने में, श्रम करने की अपेक्षा स्वभाषा में प्रवीणता प्राप्त करने के निमित्त अध्ययन करना अधिक महत्त्वपूर्ण है। जब तक मन से प्रयत्न न करेंगे, तब तक गुजराती कच्ची ही रहेगी, परिश्रम के बाद में वह पक्की होगी। प्रयत्न करनेवाले का प्रयत्न अधूरा होगा; तो उसकी भाषा भी अधूरी होगी।”

“शिक्षित तमिलों पर अंग्रेजी का इतना ज़्यादा असर हो गया है कि उनमें तमिल भाषा के माध्यम से अपना काम चलाने का उत्साह नहीं रहा। तेलुगू भाषी भाग में अंग्रेजी नहीं फली है। इसलिए तेलुगू भाषा का उपयोग ज़्यादा कर रहे हैं।”

“महाराष्ट्र में भी यह प्रयत्न चल रहा है।”

“गुजरात में मातृभाषा के जरिये शिक्षा देने का आन्दोलन शुरू हो चुका है।”

“अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा में कम से कम सोलह वर्ष लगते हैं। यदि इन्हीं विषयों की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जाये, तो ज़्यादा से ज़्यादा दस वर्ष लगेंगे। यह राय बहुत से अनुभवी शिक्षकों ने प्रगट की है। हजारों विद्यार्थियों के छह-छह वर्ष बचने का अर्थ होता है कि कई हजार वर्ष जनता को मिल गये।”

“विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में जो बोझ पड़ता है, वह असहज है। यह बोझ हमारे बच्चे उठा तो सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ती है। वे दूसरा बोझ उठाने के लायक नहीं रह जाते। इससे हमारे स्नातक ज़्यादा निकम्मे, कमज़ोर, निरुत्साही, रोगी और कोरे नक़लची बन जाते हैं। उनमें खोज करने की शक्ति, विचार करने की शक्ति, साहस, धीरज, वीरता, निर्भयता और अन्य गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं। एक अंग्रेज़ ने लिखा है कि मूल लेख और सोखता कागज़ के अक्षरों में जो भेद है वही भेद यूरोप के और यूरोप के बाहर के लोगों में है। इस विचार में जो सच्चाई है, वह कोई एशिया के लोगों की स्वाभाविक अयोग्यता के कारण नहीं है। दक्षिण अफ़्रीकी हब्शी साहसी, शरीर के कद्दावर और चरित्रवान हैं। बाल-विवाह आदि जो दोष हमारे में हैं, वे उनमें नहीं हैं। फिर भी उनकी दशा वैसी ही है जैसी हमारी। उनकी शिक्षा का माध्यम उर्दू भाषा है। वे भी बहुत हद तक कोरे नक़लची निकलते हैं। उनमें भी असली चीज़ माध्यम के रूप में मातृभाषा के हटने से लुप्त हुई दिखती है। अंग्रेज़ी शिक्षा पाये हुए हम लोग ही, इस नुक़सान का सही अनुमान नहीं लगा

पाते। हम जगदीश चन्द्र बसु और राय (प्रफुल्ल चन्द्र) को देखकर मोहांध हो जाते हैं। मुझे विश्वास है कि हमने 50 वर्ष तक मातृभाषा द्वारा शिक्षा पाई होती, तो हमारे में इतने बसु और राय होते कि उन्हें देखकर हमें अचम्भा न होता।”

“मां के दूध के साथ जो संस्कार और मीठे शब्द मिलते हैं उनके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिए वह विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने में टूट जाता है। इस संबंध में तोड़नेवालों का हेतु पवित्र ही क्यों न हो, फिर भी वे जनता के दुश्मन हैं। हम ऐसी शिक्षा के वशीभूत होकर मातृद्रोह करते हैं। इसके अतिरिक्त विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा देने से अन्य हानियां भी होती हैं। शिक्षित वर्ग और सामान्य जनता के बीच में अंतर पड़ गया है। हम जनसाधारण को नहीं पहचानते। जनसाधारण हमें नहीं जानता। वे हमें साहब समझते हैं और हमसे डरते हैं, वे हम पर भरोसा नहीं करते। यदि यही स्थिति अधिक समय तक कायम रही तो एक दिन लार्ड कर्जन का यह आरोप सही हो जायेगा कि शिक्षित वर्ग जनसाधारण का प्रतिनिधि नहीं है।”

“हमें अंग्रेज़ी में शिक्षा देने में, मैकाले का हेतु शुद्ध था। उसके मन में हमारे साहित्य के प्रति तिरस्कार का भाव था। यह छूत हमें भी लग गई, हम भी मूढ़ होकर इसका तिरस्कार करने लगे और इस मामले में अपने गुरु से भी आगे बढ़ गये। मैकाले सोचता था कि हम जनसाधारण में पश्चिमी सभ्यता के प्रचारक बनकर जायेंगे।”

“यदि हमारे हाथ में सत्ता होती, तो हम इस दोष को तुरन्त देख लेते और तब मातृभाषा का त्याग करना असंभव हो जाता।”

“ऐसी दलील दी गयी है कि रुपया कमाने के लिए और देश हित के ख्याल से अंग्रेजी का जो उपयोग किया गया, उसमें दोष की कोई बात नहीं है। यह दलील, जब शिक्षा के माध्यम का विचार करते हैं, तो ठीक नहीं मालूम होती। रुपया कमाने के लिए या देश के ख्याल से कुछ लोग अंग्रेजी सीखें, तो हम उन्हें सादर प्रणाम करेंगे। परन्तु इसी कारण अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम तो नहीं माना जा सकता।”

“अंग्रेजी पर अधिकार प्राप्त करने में हमारी अधिकांश मानसिक शक्ति खर्च हो जाये, यह बहुत ही अवांछनीय है।”

“जब हम मातृभाषा द्वारा शिक्षा पाने लगेंगे, तब हमारे घर के लोगों के साथ हमारा दूसरा ही संबंध रहेगा। आज हम अपनी स्त्रियों को सच्ची जीवन-सहवरी नहीं बना सकते। उन्हें हमारे कामों का बहुत कम ज्ञान होता है। यदि हम अपनी भाषा के जरिये उच्च शिक्षा प्राप्त करें, तो हम अपने धोबी, नाई, भंगी सभी को सहज ही शिक्षा दे सकेंगे। विलायत में हज़ामत बनवाते हुए हम नाई के साथ राजनीति की चर्चा कर सकते हैं। यहां तो हम अपने कुटुम्ब में भी ऐसी चर्चा नहीं कर सकते। इसका कारण यह नहीं है कि हमारे कुटुम्बी या नाई अज्ञानी हैं।”

“उस अंग्रेजी नाई के बराबर ज्ञानी तो ये भी हैं। इनके साथ हम महाभारत, रामायण और तीर्थों की बातें करते हैं, क्योंकि लोक शिक्षण इसी दिशा में प्रवाहित होता है। परन्तु स्कूल की शिक्षा घर तक नहीं पहुंच पाती, क्योंकि अंग्रेजी में पढ़ी बातें हम अपने कुटुम्बियों को बतलाने में असमर्थ रह जाते हैं।”

“यदि हमें विश्वास हो गया है कि मातृभाषा को

शिक्षा का माध्यम बनाना अच्छा है, तो हमें सोचना चाहिए कि उस विश्वास पर अमल करने के लिए क्या किया जाए। दलीलें दिये बिना जो उपाय सूझते हैं, उन्हें सामने रखता हूं—

1. अंग्रेजी जाननेवाले गुजराती, जानबूझकर या अनजाने भी आपसी व्यवहार में अंग्रेजी का उपयोग न करें।
2. जिन्हें अंग्रेजी और गुजराती दोनों का अच्छा ज्ञान है, वे अंग्रेजी में प्राप्त अच्छी उपयोगी पुस्तकें या विचारों को गुजराती में लोगों के सामने रखें।
3. शिक्षा समितियां पाठ्यपुस्तकें तैयार करायें।
4. धनवान लोग जगह-जगह गुजराती के माध्यम से शिक्षा के लिए स्कूल खोलें।
5. इसके साथ-साथ परिषदों और शिक्षा समितियों को सरकार के पास अर्जी भेजनी चाहिये कि समस्त शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से ही दी जाये और अदालतों और धारा, सभाओं का सारा कामकाज गुजराती में किया जाये।

“मुसलमान बादशाह फ़ारसी और अरबी को भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बना सकते। उन्होंने हिन्दी के व्याकरण को मानकर फ़ारसी लिपि को अपनाया। परन्तु वे जनसाधारण के साथ विदेशी भाषा से व्यवहार नहीं चला सके। यह हालत अंग्रेज़ अधिकारियों से छिपी हुई नहीं है।”

“हमने मातृभाषा का अपमान किया है। इस पाप का फल हमें ज़रूर भोगना पड़ेगा। हमारे में और हमारे घर के बीच ज़्यादा व्यवधान पैदा हो गया है। हम जो कुछ सीखते हैं वह अपनी माताओं को

नहीं समझा सकते हैं। जो शिक्षा हमें मिलती है, उसका प्रचार हम अपने घर में नहीं करते और न ही कर सकते हैं।”

“मातृभाषा का अनादर मां के अनादर के बराबर है। जो मातृभाषा का अपमान करता है, वह स्वदेश भक्त कहलाने के लायक नहीं है। बहुत से लोग ऐसा कहते सुने जाते हैं कि हमारी भाषा में ऐसे शब्द नहीं, जिनमें हमारे ऊंचे विचार प्रकट किये जा सकें। किन्तु यह कोई भाषा का दोष नहीं है। भाषा को बनाना और बढ़ाना हमारा अपना ही कर्तव्य है। यदि हमारा यह सिद्धान्त रहे कि अंग्रेज़ी के ज़रिये ही हम अपने ऊंचे विचार प्रकट कर सकते हैं और उनका विश्वास कर सकते हैं तो इसमें ज़रा भी शक नहीं कि हम सदा के लिए गुलाम बने रहेंगे।”

“मुझे अंग्रेज़ी भाषा से वैर नहीं है। फिर भी मेरी राय है कि हिन्दुस्तान के सब लोगों को इसे सीखने की ज़रूरत नहीं।”

“शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण है। भारत के ऋषि-मुनियों ने कहा है कि वेद आदि सारे शास्त्र जानने पर भी यदि कोई आत्मा को न पहचान सके, सब बंधनों से मुक्त होने लायक न बन सके तो उसका ज्ञान बेकार है। जो शिक्षा विचार करना नहीं सिखलाती वह व्यर्थ है।”

उपर्युक्त विचार गांधीजी ने 15 अक्टूबर से 20 अक्टूबर 1917 के बीच बिहार और भड़ौच में छात्रों के बीच बोलते हुए कहे थे।

एक अन्य स्थान पर गांधीजी कहते हैं— “शिक्षा मातृभाषा में दी जानी चाहिये— यह चीज़ हमें

साबित करनी पड़ती है, यही हमारे लिए शर्म की बात है। हम अंग्रेज़ी भाषा के प्रभाव से यदि चौंधिया न गये होते तो हमें इस स्वयंसिद्ध की चीज़ को सिद्ध करने की ज़रूरत ही नहीं रह जाती।” (सच्ची शिक्षा : पृष्ठ 43)।

26 दिसम्बर 1924 को बेलगांव में कांग्रेस के अधिवेशन में भाषण करते हुए वे कहते हैं कि “बहुत सी राष्ट्रीय संस्थाओं में आज भी मातृभाषा और हिन्दी भाषा की उपेक्षा की जाती है। बहुत से शिक्षक भी अभी तक मातृभाषा के या हिन्दुस्तानी के द्वारा पढ़ाने के महत्त्व को समझे नहीं हैं।”

23 अगस्त 1928 को ‘नवजीवन’ में गांधीजी लिखते हैं— “हिन्दुस्तान के तीस करोड़ आदमियों में से बारह करोड़ हिन्दी बोलते हैं और दूसरे आठ करोड़ उसे समझते हैं। यह बात इसका काफ़ी सबल कारण है कि सब कोई हिन्दी सीख ले।”

परन्तु इससे पूर्व 1909 में ‘हिन्द स्वराज’ में वे कहते हैं— “सारे हिन्दुस्तान के लिए तो हिन्दी ही होनी चाहिए। (परन्तु) हर एक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का, हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, फारसी को पर्शियन का और सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिये।”

भड़ौच में 1917 के अपने भाषण में ही गांधीजी ने कहा है— “हिन्दी भाषा मैं उसे कहता हूँ जिसे उत्तर में हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और जो देवनागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती है।”

गांधीजी शिक्षा को व्यापक फलक में देखते हैं और अन्ततः उनके लिए शिक्षा स्वराज्य की कुंजी है।

गतिविधि

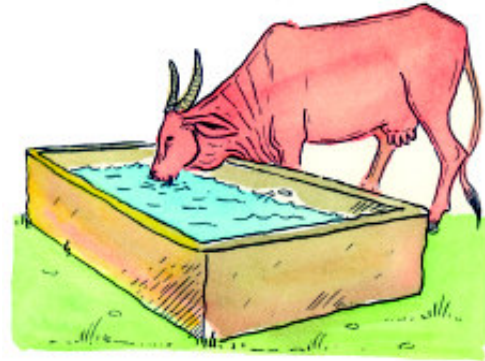
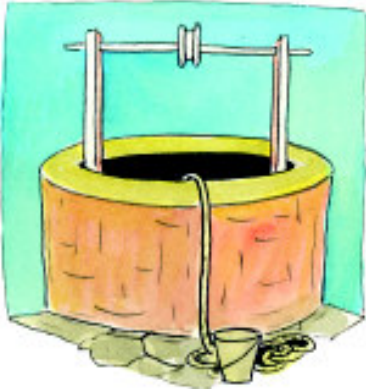
पानी कहां-कहां से?

बुनियादी शिक्षा की अवधारणा के मुताबिक प्रारम्भिक स्तर पर बच्चा अपने परिवेश के साथ अन्तःक्रिया करके, कुछ काम करके, अपने अनुभव से ज्ञान का निर्माण करता है। जो भी वह सीखता है, वह समग्रता के साथ सीखता है, उसके सामने भाषा, गणित, विज्ञान या सामाजिक ज्ञान के टुकड़े या खण्ड नहीं होते हैं। इस लिहाज से विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र ने बच्चों और शिक्षकों के लिए 'कुछ करें' (खुद करो और सीखो) नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की है। इस पुस्तिका में से एक गतिविधि यहां दी गई है।

तुम्हारे गांव या मोहल्ले के लोगों को पानी कहां-कहां से मिलता है? और वे उसका उपयोग किन-किन कामों में करते हैं? पता करो और तालिका में लिखो।

तालिका-1

स्रोत का नाम	पानी का उपयोग किन-किन कामों में होता है	साल में कितने समय पानी मिलता है
तालाब		
कुएं/बावड़ी		
नदी		
हैंडपंप		
नल		



क्या कुछ लोगों को पानी लाने घर से दूर जाना पड़ता है? पानी लाने में उन्हें कितना समय लगता है? अपने घर में पता करो कि दैनिक कामों में रोज़ कितने पानी का उपयोग होता है। (मापने के लिए बाल्टी या घड़े का अनुपात हो सकता है।)

तालिका-2

क्र.	पानी के उपयोग	कितने बाल्टी/घड़े
1.	नहाने में	
2.	पीने और खाना बनाने में	
3.	कपड़े और बर्तन धोने में	
4.	पशुओं को पिलाने में	
5.		
6.		
7.		
8.		
9.		
10.		

तालिका के आधार पर बताओ कि घर में एक दिन में कितने बाल्टी या घड़े पानी लगता है?

तुम्हारे गांव में कितने घर हैं?

बताओ एक दिन में पूरे गांव में कितना पानी खर्च होगा?

अब बताओ कि एक महीने में पूरे गांव में कितना पानी खर्च होगा?

पानी बचाने के लिए तुम्हारे यहां क्या-क्या तरीके अपनाए जाते हैं? लिखो।

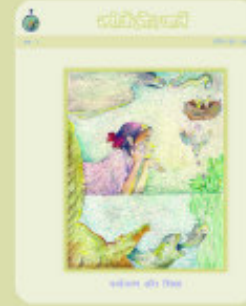
तुम्हारी नज़र में पानी बचाने के और क्या तरीके हो सकते हैं?

क्या सब लोग पानी बराबर मात्रा में उपयोग करते हैं?





विद्या भवन शिक्षा संदर्भ
केन्द्र
के
प्रकाशन



ज्ञान की संरचना	100/-
विज्ञान शिक्षण	300/-
पठन-सामग्री	50/-
कुछ करे	75/-
भाषा : प्रकृति एवं संरचना	50/-
खोजें और जानें (त्रैमासिक)	50/-
बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश (त्रैमासिक)	50/-
Proceedings of the International Seminar on Construction of Knowledge	200/-
Proceedings of the International Seminar on Science Education	300/-
Knowledge, Language & Learning (Vidya Bhawan & Macmillan Pub)	990/-
Proceedings of the International Conference on School Libraries & Reading	150/-
Nature and Structure of Language	50/-
Rajni gandha English W/B Class - I (w/b and T/b)	25/-
	40/-
Rajni gandha English W/B Class - II	22/-
Rajni gandha English T/B Class - II	40/-
Rajni gandha English W/B Class - III	30/-
Rajni gandha English T/B Class - III	60/-
Rajni gandha English W/B Class - IV	25/-
Rajni gandha English T/B Class - IV	60/-
Rajni gandha English W/B Class - V	25/-
Rajni gandha English T/B Class - V	55/-
Computer Book Class-III	35/-
Computer Book Class-IV	35/-
10 th Partner's Forum: Ecology and Education	150/-

‘रिक्शा चलाता हूँ, लेकिन अच्छे खानदान का हूँ!’

‘बाबूजी, मेरे वालिद रिसायत के कानूनगो थे, लेकिन आज यह हालत है कि रिक्शा चला रहा हूँ।’

‘क्यों, बाप की सब कमाई क्या हुई?’

‘उन्होंने पैसा कमाया, ज़मीन नहीं बनायी, इसलिए अब रोज़ कमाना और रोज़ खाना है।’

‘भाई, क्या बुराई है; पसीने की रोटी तो खाते हो?’

‘हां, बशर्ते पेट भरे। पसीना बहे, लेकिन पेट खाली रहे तो?’

‘पेट भरे तो काम छोटा—बड़ा नहीं होता।’

‘नहीं, मेरा रुवाल है कि रोटी के साथ इज़्जत भी चाहिए। हम रिक्शेवालों की क्या इज़्जत है?’

उस ज़वान, जागरूक रिक्शेवाले के इस प्रश्न का उत्तर कौन देगा?
भारत के हर वासी की रोटी, और इज़्जत एक साथ कब मिलेगी?

समयपूर्ति

कथा - नई कहानियाँ - ४५९ - १९९०-९१ का पहला अंक, पृष्ठ १५५ व १५६

प्रकाशक : दिवाज तहसीन, अध्यक्ष, विद्या भवन सोसायटी
रवागी : विद्या भवन सोसायटी
प्रिन्टिंग प्रेस : संजय प्रिन्टर्स, उदयपुर